TEXT FLY WITHIN
THE BOOK ONLY

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_178930

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No H82.1/Y29A Accession No G.H.1659

Author

Title 1944

This book should be returned on or before the date last marked below

विप्लव पुस्तक माला—११

अभिशप्त

यशपाल

विप्लव कार्यालय, लखनऊ.

जून १९४४]

[मूल्य १॥=)

प्रकाशक

प्रकाशवती-पाल

विप्लव कार्यालय,

लखनऊ.

अनुवाद सहित-सर्वाधिकार सुरक्षित

मुद्रक

पं० मन्नालाल तिवारी

शुक्ला प्रिंटिंग प्रेस, नज़ीराबाद,

लखनऊ.

समर्पण

कर्मफल के अभिशाप का विश्वास
परिस्थितियों मे संघर्ष करने के हमारे उत्साह को
निर्जीव कर हमें सजीव मृतक बनाये है।

........अजाने अपराधों के दण्ड को सन्तोष मे
भोगनेवाले, धन्य है तेरा धैर्य !

क्या कभी तू अनजाने की अपेक्षा जाने हुये में,
अप्रत्यक्ष की अपेक्षा प्रत्यक्ष में विश्वास कर
जीवन की इच्छा और अधिकार के लिये व्याकुल होगा ?

इसी आशा में असंतोष का यह निश्वास तुझे
अर्पित करता हूँ।

कहानी सूची

१.	दास धर्म	६
२.	अभिशप्त	२१
३.	काला आदमी	२५
४.	समाधि की धूल	३६
५.	रोटी का मोल	४३
६.	छलिया नारी	५६
७.	चार आने	६८
८.	चूक गई	७६
६.	आदमी का बच्चा	८३
१०.	पुलिस की दफ़ा	६३
११.	रिज़क	१०४
१२.	नमक हलाल	१२०
१३.	पुनिया की होली	१३६
१४.	हवाखोर	१४६
१५.	शम्बूक	१५१

इस संग्रह की अधिकांश कहानियाँ आज, माया, रानी, विश्वमित्र आदि में प्रकाशित हो चुकी हैं। कहानियाँ संग्रह में परिवर्तन और परिश्कार कर सम्मिलित की गयी हैं।

१

दास धर्म

वर्षा के आरम्भ में आन्द्रेकस जम्बद्वीप के वाणिज्य-प्रवास से लौटा। दीमा की अवस्था देख उसका हृदय मुँह को आने लगा। दीमा का गुलाबसा खिला कोमल मुख विरह में वृक्ष से झड़कर कुम्हला गये सेव की भाँति पीला पड़कर त्वचा सिकुड़ गई थी। नेत्र धँस कर दो सूखे घावों जैसे जान पड़ते थे। यदि आन्द्रेकस कुछ और मास विलम्ब से आता तो सम्भवत: पत्नी के स्थान पर उसे दीमा की समाधि का ही आलिंगन कर आँसू बहाने पड़ते।

मिलन के आँसू बहाती दीमा का सिर अपने हृदय पर दबा आन्द्रेकस ने निश्चय से कहा था—'मुझे नहीं चाहिये भारत का धन। तुम्हें बिलखती छोड़ अब मैं कहीं न जाऊँगा। तुम्हीं मेरा धन हो। तुम्हें पाकर मैं सब सम्पदा पर लात मार सकता हूँ। तुम्हें प्रसन्न देखने के लिये यदि मुझे बावेरू के बाजारों और गलियों में सिर पर बोझ उठाने की जीविका भी करनी पड़े या निकृष्ट किसान बनना पड़े तो वह भी मुझे स्वीकार है।'

आन्द्रेकस और दीमा के दिन और रातें प्रेम परिणय में घुलकर बीतते न जान पड़े। दीमा फिर पनप गई। उसके रक्तिम लोल ओठों पर हास्य, आयत नील लोचनों में मादक डोरे और गालों पर इंगुर लौट आया। एक संध्या आन्द्रेकस ने भारत के व्यापार-प्रवास से लाये बंगदेश के झीने स्वर्ण-खचित वस्त्रों से दीमा को सजा, पाटली पुत्र के जौहरी से खरीदा मरकत-मणियों का हार उसके गले में पहनाया।

कान्यकुब्ज के अनमोल इत्र से उसे सुवासित किया। हाथी दाँत में मढ़ा दर्पण उसके सम्मुख कर वह बोला—'देखो अपनी छवि, इस समय बावेरू, मिश्र और सीरिया के चक्रवर्ती सम्राट आन्तिओकस की पटरानी भी तुम से ईर्षा कर सकती है।'

दीमा अपने नखों की ओर देखती चुप रह गई। उसकी ठोड़ी छू आन्द्रेकस ने पूछा—'क्यों प्रिये, चुप क्यों हो?' पति के समीप आनेपर दीमा ने अपनी बाँह उसके गले में डाल, उसकी दाढ़ी के पिंगल केशों में अपने सिर के केश मिला, उत्तर दिया—'हाँ, इस समय मैं किसी भी पटरानी से अधिक सुखी हूँ। यह वस्त्र-भूषण; इनके कारण मुझे कितना विरह सहना पड़ा?' आन्द्रेकस ने दीमा को आलिंगन में ले व्यापार-प्रवास के लिये फिर समुद्र यात्रा न करने का निश्चय दोहराया।

× × ×

एक और वर्षाऋतु बीत गई। भूमध्यसागर के तटवर्ती नगरों से बहुमूल्य वाणिज्य आ-आकर बावेरू के समृद्ध बाज़ारों में भरने लगा। महावणिक मरासस की द्रव्यशालायें बहुमूल्य पदार्थों से पट गईं। अपने चतुर पुत्र को सम्बोधन कर मरासस ने कहा—'पुत्र, जिस वाणिज्य की बिक्री समय पर नहीं हो जाती उसके मूल्य को समय खा जाता है। वाणिज्य की सार्थकता ग्राहक के हाथ पहुँच जाने में ही है। अन्यथा वह व्यापारी के लिये केवल चिन्ता और हानि का ही कारण बनता है। हमारे संग्रहालय वाणिज्य से पूर्ण हैं। गतवर्ष समुद्रयात्रा से लौटी हमारी नावों की उचित व्यवस्था हो चुकी है। सीरिया के व्यापारियों के नाविक सार्थ (काफ़िले) यात्रा आरम्भ कर रहे हैं। तुम भी समय नष्ट न कर यात्रा के लिये तैयार हो जाओ। वणिक का धर्म है, प्रमाद रहित हो अपने द्रव्य को बढ़ाना। जो द्रव्य बढ़ता नहीं, वह क्षय हो जाता है। सामुद्रिक वणिक का घर समुद्र में बहती नाव ही है और यात्रा ही उसका जीवन है। तुम्हारी आयु तक पहुँचते मैं चार बेर जम्बू

द्वीप की यात्रा कर चुका था, तीन बार समुद्र मार्ग से और एक बेर, हिन्दुकुश लांघ, स्थल मार्ग से। यौवन ही व्यवसाय का समय है। बावेरू, सीरिया और मिश्र के सम्भ्रान्त वणिक युवकों के साथ तुम भी व्यवसाय यात्रा में जाओ। भगवान ज़ीयस तुम्हारा कल्याण करेंगे।

पिता का आदेश सुन आन्द्रेकस मन ही मन विह्वल हो उठा। पिछली यात्रा से लौटकर देखा दीमा का, विरह दुख से निर्जीव प्राय, मुख उसकी स्मृति में नाच गया, फिर से दूर यात्रा में जा दीमा को दुखी न करने का अपना प्रण भी याद आया। परन्तु पौरुष, आत्म-सम्मान और कर्तव्य के विचार ने उसकी जिह्वा पर ताला लगा दिया। पिता की आज्ञा उसने सिर झुका स्वीकार कर ली।

× × ×

दीमा सारी रात रोती रही। आन्द्रेकस उसे गोद में लिये बैठा रहा। दीमा की विह्वलता से उसका हृदय पिघल कंठ रुंध गया। एक भी शब्द वह बोल न सका। ओठ दबा अपने आपको वश रखने का प्रयत्न उसने किया। फिर भी गुलाबी हो गये नेत्रों से दो चार बूँद आँसू टपक कर पिंगल मूछों की नोक और छोटी तिकोनी दाढ़ी के केशों के अन्त में झूल गये। दीमा के मुँदे नेत्रों से अविरल धारा बह रही थी। आन्द्रेकस की गोद और कंधे के वस्त्र उससे भीग गये। पलंग पर बिछा, स्वर्ण-तारों खचित, सुदूर भारत से आया, लाल वस्त्र जहाँ-तहाँ आँसुओं से भीग गया। दीमा का नीरव क्रन्दन न थमा। अपने आलिंगन में उसे समेटे, ओठ दबाये, आन्द्रेकस का हृदय भी रोता रहा। दोनों की विवश विह्वलता देख दीपाधार पर जलती दीप-शिखा स्तब्ध और निश्चल रह गई।

सूर्य की प्रथम किरणों के प्रकाश में बावेरू के सामुद्रिक महावणिक मरासस के बिशाल प्रासाद पर शिलाओं से घड़े गोल कंगूरे सुनहरी हो गये। सूर्य की दुश्शील किरणें गवाक्षों से अन्तःपुर के कक्षों में झाँकने

लगीं। आन्द्रेकस से रहा न गया। विह्वल और शिथिल दीमा का आँसुओं से भीगा मुख अपने कंधे से उठा, उसकी घनी पलकों में भरे आँसू चूस, उसने कहा—'मेरी दीमा, बस !.......इस समुद्र यात्रा में मैं तुम्हें अपने साथ ले चलूँगा·······धैर्य रखो !'

दीमा का अविरल मूक क्रन्दन सिसकियों में बदल गया। वह अपने नेत्र पोंछने लगी। उसे अपने आलिंगन में और निकट समेट, ओठों से लगा, आन्द्रेकस ने कहा—'अब क्यों रोती हो प्रिये ? वचन देता हूँ, तुम्हें साथ ले चलूँगा। भद्रवंश की अनेक रमणियाँ अपने पतियों के साथ समुद्र-यात्रा में जाती हैं। महासेनानायक सीकस का तो जन्म ही नील नद के तल पर नौका में हुआ था। चिन्ता है, केवल जल दस्युओं की !'

सुगन्धित दीपक के रक्तिम और झरोखे से झाँकती सूर्य की बाल-किरणों के पील प्रकाश के मिश्रण में दीमा के रो-रोकर क्लान्त पीले पड़ गये मुखड़े पर मुस्कान और आँसुओं का मिश्रण झलक गया। आन्द्रेकस के गले में अपने बाहुपाश को शिथिलकर उसने कहा—'अब जाने दो न प्रिय ; घाम फैल रहा है। दासी आती होगी।'

× × ×

बावेरु, सीरिया और मिश्र के यवन महावणिकों का सामुद्रिक सार्थ अतलांतक महासागर के नीले तल पर श्वेत वस्त्रों की अट्टालिकाओं के समान ऊंचे पाल उड़ाता, दक्षिण दिशा की ओर चला जा रहा था। नावों और पोतों का वह समुदाय अपनी विशालता और विस्तार के कारण नगर की भाँति स्थिर जान पड़ता था। समुद्र की नियमित वायु की थपकियों से हिलोरें लेती इस नगर की नीली भूमि सम्पूर्ण नगर को नियमित गति से थिरकाती रहती। इस गतिमान नगर में नागरिक जीवन की सम्पूर्ण आवश्यकतायें और विलासिता प्राप्य थी। समृद्ध वणिकों की सेवा के लिये पोतों पर दास और दासियां थीं, स्वादु

भोजन और पान का प्रबन्ध था, आलस्य और विरक्ति को दूर रखने के लिये वीणा, मृदंग और नर्तकी के नूपुर की ध्वनि अविराम रूप से गूँजती रहती। सार्थ मगध-साम्राज्य के विलासी नागरिकों के लिये मध्य-एशिया, यूनान और रोम की विलास सामग्री लिये जा रहा था। मध्य-एशिया, यूनान और रोम के ऐश्वर्य शालियों के लिये भारत के अमूल्य वस्त्र, मणि-माणिक्य, और मसाले क्रय करने के लिये उनके कोषों में अमित स्वर्ण भरा था। उन्हें जल दस्युओं की आशंका थी। इसलिये सशस्त्र सैनिकों से भरी नौकायें इस गतिमान समृद्ध नगर को घेर कर चल रही थीं। पर्याप्त धन देकर इन वणिकों ने प्रबल, प्रतापी सम्राट आन्तिओकस की जल सेना की सेवा अपनी रक्षा के लिये क्रय कर ली थी।

महावणिक मरासस के पुत्र युवा आन्द्रेकस और उसकी पत्नि दीमा के पोत कक्ष विशेष रूप से विलास की सुख सामग्री से पूर्ण थे। आन्द्रेकस सार्थ के सम्मिलित प्रमोद से थक कर अपने उत्तेजक माधुर्य से शान्ति और विश्राम देने वाले दीमा के आलिगंन में, उसके हाथ से रोम और एथेन्स की सुरा के प्यालों से शैथिल्य जनित प्यास बुझाता। इस सुरा से कहीं अधिक मादक दीमा के ओठों से घूंट भरता वह दीर्घ यात्रा को पार किये जा रहा था। आत्म-विस्मृति के इन साधनों की भी उसे आवश्यकता न थी। दीमा के अतलांतक महासागर की ही भाँति अतल और निस्सीम नयनों में वह स्वयम ही खोया हुआ था। अनेक प्रकार के जल-वायु, फल-फूल, मनुष्य और पशु-पक्षियों को देख दीमा विस्मय और आल्हाद से किलक उठती।

यवन सामुद्रिक वणिकों के सार्थ ने सिंहल-द्वीप में मुक्ताओं का भण्डार क्रय कर भारत के पूर्वी सागर में प्रवेश किया। सैनिक और नाविक दूने सतर्क रहने लगे। उस समय कलिंगपत्तन से ले गंगासागर तक भारत का पूर्वीय समुद्र-तट छत्रपति दुर्दान्त सीमुक सातवाहन

से अभय प्राप्त, विक्रान्त जलदस्युओं के आतंक से यवन सामुद्रिक वणिकों के लिये श्मशान की भाँति भयावह हो रहा था। इन दस्युओं द्वारा ध्वंस नावों के अंजर-पंजर और मस्तूलों से भारत का पूर्वी तट बिछ गया। गौर वर्ण, पिंगल केश, स्वस्थ और बलिष्ठ यवन दास-दासियां आंध्र के कृष्ण वर्ण नागरिकों की विशेष रुचि की वस्तु बन गये। राज प्रासाद और सामन्तों की दृष्टि में इन दास-दासियों का विशेष मूल्य था। स्वदेश और स्वजन से सदा के लिये बिछुड़, दस्युओं से मोल ले लेने वाले अपने स्वामी के, जिसकी प्रसन्नता-अप्रसन्नता पर दासों का जीवन और मृत्यु निर्भर थी, यह दास विशेष विश्वास-पात्र बन जाते। इन दासों के विषय में, समीपवर्ती प्रतिस्पर्धी राष्ट्रों और सामन्तों के गुप्तचर होने की भी आशंका न थी।

यवनों का नाविक सार्थ तट से पर्याप्त दूरी पर, विशेष सतर्क भाव से, गंगासागर के संगम की ओर बढ़ता जा रहा था। आन्द्रेकस धन के मूल्य में चिन्ता का उत्तरदायित्व सैनिकों और नाविकों के कन्धे पर छोड़, प्रमोद में मग्न था। सुरा और प्रणय की मधुर मादकता में रात्रि के दो पहर व्यतीत कर, वह मधुर निद्रा में सर्वथा आत्मविस्मृत हो जाता। भूमध्य के दो पहर तपे सूर्य की प्रखर किरणें भी उसकी निद्रा भंग करने में असफल रह जातीं। उस निद्रा को समाप्त करपाता उससे भी अधिक सुखद, दीमा के सुवासित करों का स्पर्ष और उससे अधिक मधुर दीमा के अस्फुट प्रिय सम्बोधन।

ऊषा की लाली से रक्तिम पूर्व दिशा में शनैः शनैः सूर्य का वृत्त क्षितिज से उठ रहा था। यवनों के नाविक सार्थ के विशाल, शुभ्र पाल अनुकूल वायू सामर्थ्य भर उदरस्थ कर, सागर के शान्त तल पर गम्भीर, मन्थर गति से व्यूह-बद्ध विराट राजहंसों के समान उत्तर की ओर बढ़ते जा रहे थे। नाविक और सैनिक सूर्य के दीप्त वृत्त को नमस्कार कर भगवान ज़ीयस की कृपा के लिये धन्यवाद दे, उनसे मंगल की प्रार्थना

कर रहे थे। तने हुए पाल सहसा आघात से नगाड़ों की भाँति बज उठे। नाविकों ने देखा—पश्चिम दिशा से आई बाणों की बौछार ने पालों को छेद दिया है। नाविक-सार्थ में युद्ध का तूर्य बज उठा।

चौकसी के लिये नियुक्त श्येन दृष्टि नाविकों और सैनिकों ने सूर्योदय से पूर्व ही पश्चिम दिशा में जल से मिली हुई एक धूसर-नीली रेखा की ओर सेनापति का ध्यान आकर्षित किया था। अनेक बेर ध्यान से देखने पर भी उस रेखा को गतिहीन पा सेनापति ने उसे चट्टान मात्र समझ उसकी चिन्ता छोड़ दी थी। वह रेखा जलदस्यु नौकाओं की पंक्ति ही थी।

सेनापति की आज्ञा से सभी पाल तानकर. बेड़े की गति बढ़ा, शत्रु की पहुँच से दूर होजाने का यत्न किया गया। बाणों की बढ़ती संख्या ने इस चेष्टा की विफलता प्रमाणित करदी। सार्थ के सैनिकों को अपनी शक्ति पर विश्वास था। क्षुद्र शत्रु अभी उनके बाणों की पहुँच से दूर था। सेनापति ने आज्ञा दी, आत्मरक्षा के उद्देश्य से व्यूह रचना कर, सब पाल गिरा, बेड़े को स्थिर कर दिया जाय।

यवन धनुष-धारियों के लक्ष से बचने के लिये दस्यु नौकायें एक दूसरे से दूर-दूर अर्धवृत्त में फैलती चली आ रही थीं। सभी नौकाओं के लिये एक ही लक्ष था, यवन सार्थ। परन्तु सार्थ के लक्ष बेधियों के लिये छोटी-छोटी नौकाओं के रूप में सौ से अधिक अस्थिर लक्ष थे। यवन योद्धा, ढाल तलवार ले दस्युओं के समीप आने की प्रतीक्षा, उनके बाणों को सहते हुये, विकलता से कर रहे थे। आन्द्रेकस अपनी निद्रा से जाग, स्वयम् कृपाण हाथ में ले, सेनापति के साथ युद्ध संचालन के लिये प्रस्तुत था। दामा को उसने सुरक्षित स्थान में बिठा दिया।

समीप आनेपर दस्युओं ने धनुषों पर जलते हुये मसाल चढ़ा यवन पोतों के पालों पर फेकने आरम्भ किये। बेड़े में आग लग जाने से हाहाकार मच गया। दस्युओं की नौकायें मधुमक्खियों की भाँति घिर

आईं और वे बेड़े पर टूट पड़े। अनेक नाविक, सैनिक, व्यापारी और उनके दास आहत हुये और भय से सुधबुध खो जल में गिर पड़े। दस्युओं ने पराजित यवनों को निशस्त्रकर स्त्री पुरुषों को बन्दी बना लिया। सशस्त्र दस्युओं के नियंत्रण में यवन नाविक बचे हुये बेड़े को आंध्र-तट की ओर ले चले।

× × ×

लूट का स्वर्ण, बहुमूल्य द्रव्य और बन्दी दास-दासियों को ले दस्युदल आंध्र के नगरों में पहुँचे। धन को संचय करने की प्रवृत्ति से हीन, आवश्यकता से अधिक धन पाये, दस्यु दल जहाँ पहुँचते, मदिरालयों के स्वामी, वस्त्राआभूषणों के विक्रेता और वेश्यायें लालायित नेत्रों और गद्गद स्वर से उनका स्वागत करतीं। चतुर व्यापारी उन्मत्त दस्युओं से प्राप्त स्वर्ण से धनी बन, लूट में छीने उनके द्रव्य को सौदे के रूप में हथिया लेते और फिर द्रव्यों के मूल्य में दिये धन को, मदिरा और दूसरे भोग्यपदार्थों के मूल्य में लौटा लेते। कंगाल दस्यु फिर कंगल बन, जीविका के लिये साहसिक कार्य की खोज में समुद्रतट की ओर चल देते। यवन दास-दासियाँ विशेष आकर्षण के पण्य थे। शारीरिक श्रम से घृणा करनेवाले और वृद्ध नागरिक इन बलिष्ठ दासों की खोज में रहते। राजवंशी और सामन्त कहीं किसी दूसरे आश्रय की आशा न कर सकने वाले इन दासों को, जिनका अपने स्वामी के अतिरिक्त कोई न था, प्रजा से जिनका कोई सम्पर्क न था, अपनी शक्ति समझते थे। वृद्ध वेश्यायें गौर वर्ण, पिंगल केश यवनियों के शरीर से कौतुहल पूर्ण कामुकता का भरपूर मूल्य पाने की आशा करती थीं। बाज़ार में इन बन्दियों के आने पर उत्सव का सा समारोह हो जाता।

आन्ध्रपति महाराज सीमुक सातवाहन के अभयदान से ही दस्युदल का अस्तित्व था। उनकी इस कृपा के प्रति कृतज्ञता और राजभक्ति के कर्तव्य स्वरूप द्रव्यों और दासों का प्रथम प्रदर्शन राज-प्रासाद में

होता। महाराज ने सिंहल के वृहद आकार मुक्ता चुन लिये। उनकी दृष्टि दासियों और दासों की पक्तियों की ओर गई।

दीमा दासियों की पंक्ति में बैठी थी। उसके मूल्यवान वस्त्र कुचले जाकर विश्री हो गये थे। उसके नयनों की मादकता कातरता में और मुख की त्वचा का इंगुर भरा लावण्य भयार्त उदासी के पीले पन में बदल गया। दस्युओं ने उसके केशों की सुनहली आभा दिखाने के लिये वेणी खोल लटों को कंधों पर डाल दिया। उसके वक्ष पर त्वचा की कमनीयता दिखाने के लिये उसके कंचुकी का एक भाग फाड़ दिया गया। महाराज की दृष्टि उसकी ओर जाती देख, हाथ में चमड़े का गाँठदार कोड़ा थामे, दस्यु ने उसे मुस्कराने का संकेत किया। मुस्कराने का उसका प्रयास विफल रहा। महाराज की दृष्टि ठहर गई। दूसरी कुछ बन्दिनियों के साथ दीमा को महाराज की सेवा के लिये निर्वाचित कर लिया गया।

दासियों के पश्चात् महाराज की शिविका (पालकी) दासों की पंक्ति की ओर गई। युद्ध में माथे पर लगे घाव से रक्त बह आन्द्रेकस के सिर के केश और दाढ़ी-मूँछ अभी नारियल की जटा की भाँति चिपक रहे थे। एक ओर खड़ी दीमा भगवान ज़ीयस के चरणों में प्रार्थना कर रही थी—उसका पति भी राज सेवा के लिये निर्वाचित हो जाय। जीवन भर के लिये वे एक दूसरे से खो न जाँय।

दीमा की कातर याचना भगवान ज़ीयस को स्वीकार हुई। महाराज की मर्मज्ञ दृष्टि ने आन्द्रेकस में विशेषता पाई और दूसरे कुछ सुस्वरूप दासों के साथ उसे भी राजकीय सेवा में ले लिया गया।

कोमलांगी और चतुर दीमा को अन्तःपुर में राजमहिषी के प्रसाधन कार्य में नियुक्त किया गया। कला मर्मज्ञ महाराज ने दीमा के लोल लावण्य और कण्ठ माधुर्य का संकेत पा, अवसाद के क्षणों का उपचार करने की सेवा के लिये, उसे संगीत और नृत्य की शिक्षा की आज्ञा दी।

आन्द्रेकस ने विधाता की रेखा को अटल समझ, अपने कर्तव्य को निबाहा। अपनी ततपरता और प्रतिभा से वह शीघ्र ही, कठोर शारीरिक श्रम से मुक्त हो, दासों का नियामक हो गया और फिर स्वामी को ही 'एकमेव देव' समझ, अक्षुण्ण स्वामिभक्ति की शपथ ले, वह महाराज का अत्यन्त अन्तरंग अंगरक्षक नियत हो गया।

× × ×

चैत्र की पूर्ण ज्योत्सना में स्फटिक मण्डित प्रांगण में श्वेत पुष्पों के वितान तले, शुभ्र पीठिका पर शुभ्र उपाधानों के सहारे, शुभ्र वस्त्र धारण किये, मुक्ता माला पहने मेघवर्ण महाराज सीमुक सातवाहन बैठे थे। दो यवनियां श्वेत चंवर डुला रही थीं। महाराज की पीठ पीछे अंग रक्षक दास आन्द्रेकस सेवा में प्रस्तुत था। सन्मुख, बीच का स्थान छोड़ अन्तरंग के सामन्त आसनों पर बैठे थे।

अपनी शिक्षा समाप्त कर दीमा महाराज की प्रथम सेवा के लिये प्रस्तुत हुई। वह चाँदी के सूक्ष्म तारों से खिंचे, महीन वस्त्र का लहंगा और कंचुकी पहने थी। उसके आभूषण मुक्ता और श्वेत फूलों के थे। उसके केशों, कण्ठ, कलाइयों और कटिमें पुष्प मालायें वलय और मेखला के रूप में लिपटी थीं। कोमल पदों से चाँदी के नूपुर की ताल देते हुये वह महाराज के सम्मुख प्रस्तुत हुई। प्रांगण की स्फटिक शिला पर मस्तक रख उसने 'एकमेव स्वामी' महाराज को दण्डवत किया।

अवसर देख वीणा और मृदंग लय से बज उठे। दासी के कर्तव्य में दीक्षित होने के पश्चात् प्रथम बार दीमा ने आन्द्रेकस को देखा। उसका मन हिलोर उठा। आँख भर अपने प्रणयी को देख दीमा ने नेत्र मूंद लिये। वाद्य की लय पर उसका शरीर गति करने लगा। तन्मय हो वह नाचने लगी, अपने आपको निछावर कर देने के लिये।

दर्शक स्तब्ध थे। महाराज मंत्रमुग्ध भुजंग की भाँति निश्चेष्ट और स्थिर रह गये। दास आन्द्रेकस के नेत्र भीग गये। अपनी प्रसन्नता और

कृपा प्रकट करने के लिये महाराज ने साधुवाद दे, आदर के लिये नर्तकी को एक चशक सुरा प्रस्तुत करने की आज्ञा दी। विनयावनत दीमा ने सुरा पात्र प्रस्तुत किया। चशक रिक्त कर महाराज ने नर्तकी को और नाचने की आज्ञा दी। दास आन्द्रेकस मूर्तिवत देखता रहा।

नृत्य के पश्चात सुरा, सुरा के पश्चात् नृत्य। महाराज झूमने लगे। आज्ञा पा नर्तकी पुनः सुरापूर्ण चशक ले प्रस्तुत हुई। महाराज ने प्रसन्न हो नर्तकी की बाँह थाम उसे अंक में ले लिया। सामन्त लोग शिष्टाचार से मस्तक नवा अनुपस्थित होगये। वादक और शरीर रक्षक परोक्ष में चले गये। केवल कर्तव्य-नियुक्त, अन्तरंग अंग-रक्षक दास आन्द्रेकस अपने स्थान पर निश्चल रहा। महाराज सुरा और सौन्दर्य की मादकता से पूर्ण तृप्ति की चेष्टा में आत्म विस्मृत हो गये। दासी नर्तकी उनके अंक में तृप्ति का साधन थी। उसका कर्तव्य और धर्म था, महाराज की इच्छा।

महाराज शिथिल अंग हो, निद्रा में बेसुध हो गये। मर्दित शरीर दासी उनके, बाहुपाश से मुक्त हो, राजपीठ के समीप खड़ी होगई। अवसाद भरी दृष्टि उसने दास आन्द्रेकस के भीगे नेत्रों में डाली और सिर झुका लिया।

आन्द्रेकस संज्ञाहीन सा आगे बढ़ा और दोनो के नेत्रों से आँसू बह चले। दीमा को आन्द्रेकस ने अपने आलिंगन में बाँध लिया। दोनों आवेश में मूढ़ हो गये।

निद्रा में बेसुध महाराज ने पीठ पर करवट ली और स्फटिक शिला मण्डित प्रांगण पर गिर पड़े। सचेत हो उन्होंने दास और दासी को आलिंगन पाश में देखा। क्रोध से वे चीत्कार कर उठे।

लताओं की ओट से सशस्त्र, शरीर रक्षक दास निकल आये। दीमा और आन्द्रेकस के शरीर तुरंत रस्सियों में बँध गये। दास की स्पर्धा-स्वामी की भोग्य नारी के स्पर्ष की ?...क्रोध से महाराज का हाथ कृपाण की मूठ पर गया परन्तु वे रह गये।........इतने बीभत्स अनाचार का

दण्ड क्षणिक यातना की मृत्यु से ? महापातक अपराधियों को विचार के लिये पुनः उपस्थित करने की आज्ञा दे, महाराज क्षुब्ध मन को स्थिर करने के लिये अन्तःपुर में चले गये।

कलिंग-अधिपति, धर्मरक्षक, महाराज सातवाहन ने धर्माचार्य, नीति-विज्ञ, न्याय-मंत्री से जिज्ञासा की—ऐसे घोर अपराध का दण्ड क्या होना चाहिये ?

नीति और धर्म का विचार कर शास्त्रज्ञ मंत्री ने उत्तर दिया—ऐसे महापातक विश्वासघात का दण्ड है, अंग-अंग हाथी के पांव तले कुचल कर मृत्यु !

दारुण यंत्रणा से मृत्यु का दण्ड सुन दीमा सिर झुकाये खड़ी थी। दयालु महाराज के क्रोध का आवेश न्यून होगया था। गत रात्रि के उन्माद की स्मृति की रेखा उनके मस्तिष्क में क्षीण सी चमक गई। आर्द्र स्वर में उन्होंने कृपा की—दासी, मृत्यु से पूर्व क्या प्रार्थना करना चाहती है ?

महाराज की करुणा से उत्साहित हो दीमा ने कम्पित विनीत स्वर में प्रार्थना की—यवनों के देश में मृतक शरीर चिता पर भस्म न कर पृथ्वी में गाड़ दिये जाते हैं। हम दोनों अपने देश में पति-पत्नी थे। मृत्यु के पश्चात हमारे शरीरों को एक साथ समाधि दी जाने की दया हो। हम लोग स्वर्ग में फिर एक दूसरे को पा सकें।

महाराज ने सम्मति के लिये शास्त्रज्ञ मंत्री की ओर देखा। मंत्री ने उत्तर दिया—'यह केवल पापमूलक अनाचार की प्रार्थना है। अन्नदाता, स्वामी के प्रति विश्वासघात कर स्वर्ग की आशा करना अधर्म है। दासका केवल एक धर्म है, प्रभु सेवा !

दासों को अपने धर्म के प्रति सचेत करने के लिये, दीमा और आन्द्रेकस के मत्तगज के पाँव तले कुचले गये क्षत-विक्षत शरीर राजप्रासाद के स्तभों से लटका दिये गये।

अमीनुद्दौला पार्क में प्रायः ही प्रदर्शनी, मेला या जलसा कुछ न कुछ हुआ ही करता है। मेले-ठेले के धक्के से परेशान हुए बिना तमाशे की सैर करनी हो तो किनारे के किसी दुमँज़िले मकान के बरामदे से हो सकता है। इस विचार से इन जाड़ों में संध्या-भोजन के बाद, मुँह में पान और शुक्लाजी के बच्चों के लिये जेब में लैमनड्राप ले, छड़ी घुमाता हुआ मैं प्रायः शुक्लाजी के बरामदे में जा बैठता।

शुक्लाजी स्वयं जैसे बैठकबाज़ और हँसोड़ हैं, उनकी श्रीमतीजी भी वैसी ही मिलनसार हैं। दिनभर कारोबार की चख-चख के बाद संध्या समय घण्टे-दो घण्टे सभ्य और सुसंस्कृत लोगों के साथ बैठ बातचीत कर लेने से एक संतोष-सा हो जाता है।

शुक्ला जी के दोनो बच्चे-लल्लू और सविता मेरे क़दमों की आहट ज़ीने से भाँप जाते हैं। उन्होंने आंगन में ही घेर लिया। जेब ख़ाली करते हुए पुकारा—'शुक्लाजी!'

आंगन के सामने कमरे के परली ओर, बरामदे से झांक कर मिसेज़ शुक्लाने उत्तर दिया—'आइये न!........कैसे पुकार रहे हैं; जैसे बिलकुल अपरिचित हों!'

बिजली की हज़ारों बत्तियों के प्रकाश में, नीचे पार्क में प्रदर्शनी का मेला खूब भर रहा था। भीड़ अधिक देख, प्रसंग छेड़ने के अभिप्राय से मुस्कराकर मैंने पूछा—'इतनी भीड़; क्या आज फिर जालौन और फतेहपुर में आतिशबाज़ी का मुक़ाबिला है?'

बात रखने के लिये मुस्कराहट में सहयोग दे मिसेज़ शुक्ला ने कहा—'कुछ होगा ही, लोगों की जेब के पैसे खींचने के लिये कुछ न कुछ बहाना चाहिये।'

अपने अभ्यास के विरुद्ध ऊँचे स्वर में, हँसकर, शुक्लाजी ने कुछ न कहा। वह किरमच की आराम कुर्सी पर पाँव फैलाये बैठे थे, बैठे रहे। दाँयें हाथ की उँगलियों में ठोड़ी को टिकाये, पीठ पीछे की पटिया

पर सिर धरे, वह गम्भीर मुद्रा से जगमगताते प्रकाश में बावली हो रही भीड़ की ओर देखते रहे। दृष्टि दूसरी ओर रहने पर भी मेरे कुर्सी पर बैठ जाने की प्रतीक्षा में थे।

'क्या ज़माना आगया है....' चप्पल पर रखे अपने पाँव हिलाते हुए वह बोले। शुक्लाजी की इस भूमिका में सहयोग देने के लिये श्रीमती जी के चेहरे परसे मेरे स्वागत के लिये क्षणभर को आयी मुस्कराहट विलीन हो गयी—'अरे जाने क्या होनेवाला है दुनिया में....' एक गहरी साँस खींच उन्होंने गर्दन घुमाली।

इस प्रस्तावना से पर्याप्त गम्भीरता और उत्सुकता का वातावरण तैयार हो जाने पर, धीमे-धीमे शुक्लाजी ने आरम्भ किया—'भाई, इन समयों में जो न हो जाय वही थोड़ा है, हाँ....! यह जो गूँगे नवाब का अहाता है; जहाँ पीछे बमपुलिस बनी है; वहीं, उसके साथ खसी हुई सी कोठरियाँ हैं। वहाँ पिछली रात खून हो गया। खून किया किसने ?........पाँच साल के बच्चे ने!'—कुर्सी पर लेटे से वह उठ बैठे। यह अत्यन्त विस्मयजनक समाचार सुनाने के प्रयत्न में उनकी आँखें स्वयं विस्मय से फैल गयीं....'क्या विश्वास कर सकोगे ?'

'पाँच बरस के बच्चे ने खून तो क्या किया होगा'....मैंने विस्मय में सहयोग दिया....'कोई दुर्घटना बेचारे से होगयी होगी !........लड़के छत पर खेल रहे होंगे। यह पतंगबाज़ी........!'

समर्थन की आशा से मैं श्रीमती शुक्लाकी ओर देखने लगा। उनके मुख पर विषाद की छाया गहरी होगयी। कुर्सी की पीठ पर रखे अपने हाथ पर गाल टिका उन्होंने एक और दीर्घ निश्वास लिया।

उत्तेजना में शुक्लाजी कुछ आगे झुक आये—'क्या कह रहे हो;'—दोनों हाथ के पंजों को बाँध, संकेत से उन्होंने कहा—'ख़ून ! गला घोंटकर ख़ून !........पाँच बरस के बच्चे ने।'

आश्चर्य से फैली मेरी आँखों ने पूछा—'कैसे ?' 'दीवार की ओर

जो सबसे पीछे कोठरी है, वहीं एक झल्लीवाला रहता है, ज्वाला ! जात का अहीर। उसके एक पाँच बरसका लड़का और तीन बरस की लड़की थी। झल्ली ढोनेवाला क्या कमा लेगा? कभी चार-छः, कभी दोही आने। अरे, अमीनाबाद-फतेगंज से मोट उठवाकर आप आधा मील या मीलभर ले जाइयेगा, दो-चार, हद छः पैसे दे दीजियेगा? उसकी अहीरन फतेगंज में दाल दलने चली जाती। दो-तीन आने, आधेक सेर अनाज ले आती। किसी तरह दोनों बच्चों को पाल रहे थे। समय जैसे हैं, जानते ही हो। रुपये का बारह-चौदह सेर मिलता था सो अब अढ़ाई-तीन सेर मिलता है; वह भी अन्न नहीं, कुअन्न। किसी तरह रूखे-सूखे बच्चों का पेट भर रहे थे। इस पिछले सनीचर अहीरन के एक बच्चा और होगया।

"अहीर झल्ली ढोकर जो कुछ ला पाता, उसी में गुज़ारा चल रहा था। गुज़ारा क्या; चूनी-भूसी जो कुछ मिला, एक जून आधा पेट खाकर पड़ रहे। न हुआ बच्चों को खिला दिया। खुद जैसे-तैसे रात काट दी। पर छाती के बच्चे का पेट कैसे भरें? माँ के दूध उतरे तो उसके पेट में कुछ जाय! माँ दिन-दिन स्वयं सूखती जा रही थी। कहीं पानी के लोटों से दूध बनता है? गैया को भी तो घास-भूसी कुछ चाहिये ही।"

गौमाता और नारी-माता की इस तुलनात्मक चर्चा से मेरी दृष्टि श्रीमतीजी की ओर उठ गयी। वह कुर्सी पर करवट से बैठी थीं। इस भोंड़ी बात से वह और भी घूम गयीं। उनकी उपेक्षा कर शुक्लाजी कहते चले गये :—

'आज क्या हुआ? बाप तड़के ही झल्ली ले सब्जी मण्डी चला गया। चुटकी भर आटा जो कुछ था, माँ ने लाटे में घोल दिया। दो-दो चुल्लू लड़के-लड़की को पिला दिया। बच्चे अभी और माँग रहे थे। उन्हें डाँट, माँ ने थोड़ा सा घोल बचा लिया। छाती में दूध था नहीं। कपड़े की बत्ती से माँ वही घोल नन्हे बच्चे को भी पिलाने लगी।

'माँ की तबीयत ठीक नहीं थी। उठके बमपुलिस तक गयी।

लौट के आयी तो बेचारी की चीख निकल गयी। लड़का नन्हे बच्चे का गला घोंटे बैठा था। बच्चे के प्राण निकल चुके थे। माँ सिर नोंच रोने लगी।

लोग इकट्ठे होगये। बच्चों को धमकाकर पुचकार कर पूछा—'भैया ने नन्हे को मार दिया।'—लड़की ने उत्तर दिया।

"लड़के को पुचकारा, मिठाई का लालच दिया। कहता है; सुनिये, कहता है—'अम्मा घोल हमें नहीं देती। नन्हे को पिला देती है। बड़ी भूख लगी थी। सुना आपने....क्या समय आ रहे हैं ?'

वितृष्णा के स्वर में मिसेज़ शुक्ला ने कहा—'देखिये न, इन लोगों के बच्चे इतनी उम्र में भी कैसे पक्के होते हैं। पाँच बरस का बच्चा भी समझता है, उसका हिस्सा बँटानेवाला उसका दुश्मन है। यह हमारी सविता, इस सावन में पाँच की हो गयी, छठा लग रहा है। खाने को दो, थाली में कुत्ता मुँह डाल दे तो उलटा उसे प्यार करने लगती है।'

मेरी दृष्टि मिसेज़ शुक्ला की ओर से अपनी ओर आकर्षित करने के लिये शुक्लाजी ऊँचे स्वर में बोलने लगे—'अब कहिये, जिस देश में इतना पाप बस गया हो, वहाँ अकाल, महामारी, भूकम्प जो न हो जाय वही भगवान की दया। ऐसे ही कर्मों की बदौलत तो देश दाने-दाने को तरसने लगा है....ओफ़ दूध पीते बच्चों तक के दिल में बैर और हिंसा। इसी का दण्ड तो हम लोग भोग रहे हैं।

अपनी कुर्सी पर कुछ और आगे बढ़ उन्होंने पूछा—'सोचिये, ऐसे बच्चों का आगे जाकर क्या बनेगा ?'

'भूख....'—मैं कहना चाहता था। मेरी बात काट शुक्लाजी और ऊँचे स्वर में बोले—'अजी भूख नहीं तो ऐसे कर्मों का फल और क्या होगा ? ऐसे पापों का फल तो सर्वनाश होकर भी पूरा नहीं हो सकता।'

मनकी अवस्था बहस करने लायक न रही। पाप के कारण और फलके सम्बन्ध में सोचता रह गया:—जन्म से पाप करने के लिये मजबूर, यह अभिशप्त क्या कभी पापमुक्त हो सकेंगे........ ?

३

काला आदमी

एम० ए० शैक सुबह दिन चढ़े उठे। सिरहाने की खिड़की के काँच से छनकर सूर्य की किरणों ने उनकी आँखों को चकाचौंध नहीं किया, जैसा कि पिछले दो सप्ताह से प्राय: हो रहा था। रात में दो कम्बल साँट कर सोये थे सर्दी के ख्याल से या इसलिये कि नैनीताल आने के लिये इस मँहगी में भी दो नये कम्बल खरीदे थे। लिहाफ़ से आराम मिल सकता है, लेकिन वह पुराने ढङ्ग की चीज़ है। लाल-नीली छींट का अबरा और हरी मगजी, ये इस ज़माने की चीज़ें नहीं हैं। इनका इस्तेमाल करने वाला दकियानूस मालूम होता है। बिलायत में बर्फ़ पड़ती है लेकिन सब लोग कम्बल ही ओढ़ते हैं। साहब लोग लिहाफ़ इस्तेमाल नहीं करते।

शैक की आँख खुली तो सर्दी नहीं मालूम हुई, बल्कि कुछ घुटता-सा लगा। सोचा क्लाउडी (बदली) है। ख़्याल आया, पिछली रात की खुमारी भी हो सकती है। उसी समय यह भी याद आगया कि आज नैनीताल छोड़कर नीचे जाना ही होगा। मन की उदासी से बन्द कमरे की हवा और भी बोझल जान पड़ने लगी। अस्पष्ट स्वर में शैक ने कहा—"ओ, इट्स स्टफ़्फी (ऊँह, घुट रहा है) !

शैक ने पलंग पर करवट ले खिड़की से झाँका। धौले धुँये का धुन्धलापन दृष्टि को रोके खिड़की के सामने खड़ा था। हाथ बढ़ा, चिटखनी हटा, शैक ने खिड़की का किवाड़ खींच लिया। झीना-झीना-सा धुन्ध खिड़की की राह भीतर लुढ़क पड़ा। उसकी शीतलता में

साँस ले शैक फिर अस्पष्ट स्वर में बोला—"नाइस !" (बहुत खूब !) खिड़की के सामने से होकर बहुत महीन धुनी रुई या निर्गंध धुयें का बादल-सा गुजर रहा था। सामने झील पार पहाड़ी की चोटी से लेकर प्राय: नीचे झील तक का भाग ऐसे ही मलमल के-से पर्दों में दृष्टि से ओझल था। जहाँ-तहाँ एक के पीछे एक उड़ते चले जाते बादलों की ओट से किसी बँगले की लाल छत या सफ़ेद दीवारें पल भर को झलक दिखा लोप हो जातीं।

नीचे झील के तरल, हरे फ़र्श पर भी बादल करवँटें ले रहे थे। कभी झील के किसी भाग पर हरियाली झलक जाती और उसमें कोई थिरकती नाव कुछ क्षण दिखाई दे फिर अदृश्य हो जाती। इस धुँधले-धौलेपन के अम्बार में 'याटक्लब' की पालदार नावें अपने स्थिर, श्वेत पाल उठाये ऐसे सो रही थीं, जैसे कोई विशालकाय बत्तख अपना एक पंख ऊँचा उठा जल में डूबकर रह गई हो। दिखाई न पड़ने के इस सौन्दर्य से मुग्ध हो शैक कुछ क्षण खिड़की का किवाड़ थामे, स्थिर आँखों से देखता रह गया। पहुँच से बाहर आकाश में मँडराने वाले बादल उसके चारों ओर, उसके हाथ में और उसके कमरे से नीचे लोट-पोट हो रहे थे। फिर उसके होंठ हिले और अस्पष्ट स्वर में उसने कहा—'ग्रैण्ड !' (वल्लाह !)

पलङ्ग के सिरहाने तिपाई पर पड़े सिगरेटकेस से एक सिगरेट होंटों में थाम उसने दियासलाई की डिबिया पर सींक खींची। सींक का मसाला झड़ गया। वह सुलगी नहीं। तीसरी दियासलाई भी नहीं सुलगी, बल्कि डिबिया का मसाला छिल गया। मुस्करा कर शैक ने कहा—"ओह, डैम्प !" (सील गई !) चौथी दियासलाई जल पाई। शैक की सिगरेट सुलग गई। निर्गंध धुयें के विराट समारोह और प्रवाह में शैक ने भी अपने फेफड़ों से शक्ति भर धुआँ और मिला दिया। बिस्तर में पहनने के चौड़ी धारीदार कपड़े पहने उसका शरीर कम्बलों

से बाहर निकल आया। समीप कुरसी पर बैठ दृष्टि खिड़की से बाहर लगाये वह धुयें के बादल छोड़ता चला जा रहा था। सहसा तल्लीताल की ओर से सूर्य की तिर्छी किरणें लुढकते हुये बादलों को बेधती हुई झील की ढलमल सतह को छू गईं और फिर एक क्षण में लोप। शैक के मुख से निकल गया—'स्प्लेण्डिड !' (वाह, क्या शान है !)

शैक स्वगत बातचीत करते समय भी अँग्रेज़ी में ही बोलता था। यानी, वह सोचता भी अँग्रेज़ी में ही था। आईने के सामने विशेष प्रयत्न से नकटाई की गाँठ ठीक से बाँधकर उसका मन समर्थन करता—'O.k.' कहीं चलने का समय हो जाने पर वह अपने आपको सचेत करता—'टाइम टुबी मूविङ्ग। (चल पड़ना चाहिये) ! और कभी परेशानी अनुभव कर वह बड़-बड़ा देता—'बोरिंग !'

लड़कपन में होश सँभालने और मनुष्य बनने का स्वप्न देखते ही उसने साहब—साहब की बोली को शक्ति तथा आदर का प्रतिनिधि और समानार्थक देखा था। बचपन में शिक्षा अलिफ़ बे की तख्ती से शुरू ज़रूर हुई परन्तु अंग्रेज़ी याद कर सकने लायक आयु होते ही उसने अँग्रेज़ी पढनी शुरू की। उसके मुख से अँग्रेज़ी का कोई शब्द सुन होनहार बेटे के भविष्य की कल्पना से पिता शेख मुश्ताक़ अहमद और उसकी माता के चेहरे पर मुस्कराहट फूट आती। ग़रीब और पद-दलित काले आदमियों के विराट समूह में पैदा हो, विद्या-बुद्धि और भाग्य के बल, मुनव्वर के साहब बनने का प्रयत्न जारी रहा।

मुनव्वर के पिता, शेख मुश्ताक़ अहमद, लड़के के भविष्य का ख़्याल कर अपने इलाक़े से गुजरने वाले तमाम साहब लोगों को सलाम बजा लाते। अवसर होने पर साहब लोगों के लिये डाली और शिकार का भी प्रबन्ध करते। साहब लोगों के हाथ की चिट्ठी का उनकी दृष्टि में उतना ही मूल्य था जितना किसी दस्तावेज़ का। इस ज़माने में साहब लोगों की सिफ़ारिशी चिट्ठी उतनी सुगमता से नहीं मिल

पाती और न उसका वह प्रभाव ही रह गया है। उनके वालिद यानी मुनव्वर के दादा' के ज़माने में साहब लोगों की सनद ही सबसे बड़ी बरक़त और सलाम सबसे बड़ा हुनर था। यहाँ तक कि वे कभी अपने गाँव के समीप रेल के स्टेशन पर जाते तो गाड़ी आने के समय तक प्रतीक्षा कर 'गाड साहब' और 'डिलेवर साहब' को सलाम करके लौटते।

शेख मुश्ताक अहमद के समय में सलाम और सनद दोनों की ही बरक़त कम हो गई। यह बेक़द्री देख उन्होंने कहना शुरू किया—'अब असली खानदानी नुत्फ़े के साहब लोग विलायत से आते ही नहीं। वालिद के ज़माने में कलट्टर साहब लोगों का डेरा चलता था तो दस-दस घोड़े सवारी के साथ रहते। जिसके सलाम से खुश हो गये, कह दिया—'वेल यह गाँव टुमको जागीर में दिया।' और अब क्या है, टुच्चे गोरे लोग विलायत से आते हैं। दरखास्त पर दरखास्त दिये जाओ, कुछ सुनाई नहीं। जैसे हरवाहे, किसान, काश्तकार, वैसे ही जमींदार, तालुकेदार। मल्का के वक्त की बात ही और थी। और जब से काला आदमी अफ़सर होने लगा, इनसाफ़ रह ही नहीं गया। इनसाफ़ है अँग्रेज़ के हाथ में। अँग्रेज़ न हो तो काले आदमी एक दूसरे को फाड़-फाड़कर खा जायँ।" गोरे आदमी के सम्मुख झुकना, उसे सलाम करना, मियाँ शेख मुश्ताक हुसेन को स्वाभाविक जान पड़ता था। परन्तु काले आदमी का साहब के अधिकार और अभिमान से अकड़ कर चलना और उसके सम्मुख झुकना, उन्हें विडम्बना जान पड़ती थी।

मुनव्वर की धारणा दूसरी थी। उसके जीवन की महत्वाकांक्षा काले आदमी के स्वाभाविक दैन्य की निराशा स्वीकार न करती। वह स्वतंत्र साहब बनने का स्वप्न देखता था। उसके फूफा का भतीजा पल्टन में डाक्टर बनकर साहब हो गया था। उसका एक फुफेरा भाई जंगलात महकमे में एस० डी० ओ० अफसर बन, बिलकुल साहबी ढंग से रहता था। परिचितों और बिरादरी में भी कितने ही लोग अँग्रेज़ी पढ़ सरकारी

नौकरी पा अँग्रेजी बोल, अंग्रेज़ी ढंग से रहते थे। इन सब लोगों के साहबियत के तौर-तरीके और सामान देख मुनव्वर स्वयं साहब बनने के मधुर स्वप्न में खो जाता।

इसी स्वप्न को चरितार्थ करने के लिये वह साहबियत की विद्या अँग्रेज़ी अनेक रूप में एम० ए० तक पढ़ता रहा—साहित्य, गणित इतिहास और विज्ञान के माध्यम से वह अँग्रेज़ी ही पढ़ता रहा। कॉलेज में पढ़ते समय ही उसने साहबी ढंग अपना लिया। दादा और पिता की तराशी मूछों और लम्बी दाढ़ी की जगह सेफ़्टीरेज़र से सफाचट चेहरा चमकने लगा। बुज़ुर्गों की उस्तरे से घुटी चाँद की जगह उसके सिर पर उतार-चढ़ाव से कटे घुँघराले बाल सँवारे रहते। कुरते-पायजामे की जगह कमीज़-पतलून! नैचे और हुक्के की जगह साफ-सुथरा हल्का-सा सिगरेट होठों में थमा रहता, जो होठों की हरकत के साथ थिरक उठता। यह साहबियत की अदा थी, नज़ाकत और मर्दानगी लिये हुये। काले आदमियों के कूड़े-करकट के काले ढेर पर साहबियत की शिक्षा और महत्वाकांक्षा की बरसात पड़ने से जैसे कुछ कुकुरमुत्ते उठ आते हैं, वैसे ही रूप-रंग में अपनी परिस्थितियों से मिलकर भी, अपनी महत्वाकांक्षा में मुनव्वर भी उठता चला गया। घर के पुराने ढंग के बावजूद मुनव्वर ने अपनी कोठरी को रूम (कमरा) बना लिया। मुनव्वर अहमद की जगह वह एम० ए० बन गया। खान्दान का पुराना पद मियाँ छोड़ उसने मिस्टर कहलाना आरम्भ किया और अँग्रेज़ी में शेख की स्पेलिंग (हिज्जे) बदल वह शैक बनगया।

अत्यन्त परिश्रम से प्राप्त की साहबी ढंग से साहबी बोली बोल सकने की योग्यता और अपने खान्दान के लिहाज और प्रभाव के कारण शैक को मातहत अफ़सर (Subordinate officer's grade) की नौकरी मिल गई। तनखाह सवा-सौ रुपया थी परन्तु साहबियत के ढंग और दर्जे से रहने में खर्च अधिक था। बारोज़गार होकर भी वह कर्जों से

दबा रहता और घर के सम्मुख याचक था; परन्तु समाज के सम्मुख सधा हुआ सुथरा साहब होने की तपस्या जारी थी। ऊँचे दर्जे के साहब लोगों की बैठक और क्लब तक उसकी पहुँच न हो पाई; परन्तु काले आदमियों के जिस प्रवाह से वह कड़ी तपस्या से ऊपर उठ सका था, गिर कर उसमें मिल जाने के लिये भी वह तैयार न था। वह साहबों के समाज के स्वर्ग और काले आदमियों के कूड़े-करकट के बीच त्रिशंकु की भाँति लटका हुआ था। उसकी दृष्टि निरंतर तरक्की द्वारा ऊँची साहबियत पाने की ओर लगी हुई थी। युद्ध के दौरान में ज़रूरत के कारण काले आदमियों के लिये बन्द, साहबियत के अनेक ओहदे खुल गये। ऐसे ही किसी ओहदे पर वह भी फिसल जाये, इसी आशा और प्रयत्न में वह दो सप्ताह की छुट्टी ले नैनीताल आया था। और फिर, गरमी में नैनीताल न जा सकना भी तो साहबियत में कलंक समझा जाता है।

नैनीताल में उसने अपनी कल्पना का स्वर्ग पाया। लखनऊ में वह साहबियत के सब सलीके के बावजूद केवल सेक्रेटेरियेट का क्लर्क था। नैनीताल में एक परिचित के यहाँ ठहर, अपने सब से कीमती सूट पहन, पन्द्रह दिन में तीन सौ रुपये खर्च कर, वलेरियों में चाय पी, कैपिटल के नाच में किसी गौरांग युवती के साथ नाच और मैट्रोपोल में लंच खा, वह साहब के अस्तित्व को पूर्ण रूप से अनुभव कर सकता था और काले आदमी की छाई, चाहे, कुछ समय के लिये ही, उससे दूर हो सकती थी।

अपने इस स्वप्न को शैक ने नैनीताल में चरितार्थ भी किया। काले आदमियों से खींची जाती रिक्शा पर वह पाउडर की सुवास और ताज़गी लिये गौरांग एंगलो-इण्डियन युवती को बगल में लिये, गर्व से सिर ऊँचा कर साहब लोगों के बीच माल रोड पर धड़धड़ाता निकल गया। मैट्रोपोल से वह काले आदमियों के कंधे पर झूलती डाँडी में सिगरेट पीता हुआ, काले आदमियों के बाज़ार मल्लीताल और तल्लीताल

में से गुजरा। जब वह कैपिटल में नाच के समय पेग पर पेग माँग रहा था, काला आदमी खानसामा, सफेद चोगा पहने कमर और पगड़ी पर पेटी लगाये, उसकी पलकों के संकेत पर नाच रहा था। उस समय वह इस काले आदमियों की बाढ़ में, काली लहरों के परस्पर संघर्ष से पैदा हो गई लहरों के सिर पर नाचती श्वेत झाग की भाँति, अपनी नशे से मतवाली कल्पना में थिरक रहा था।

और जब, रात की फुहार में, गोरी मेम के हाथ को चूम, सिगरेट से धुआँ उड़ाते वह काले कुलियों के कंधों पर डाँडी में लद अपने स्थान पर लौटा, उसके मेजबान उसकी प्रतीक्षा में अभी तक जाग रहे थे। एक तार उनके हाथ में था। शैक के नाम तार था, उसके छोटे भाई का। दुगनी फीस दे अर्जेण्ट तार दिया गया था। छः लाइन के तार में जीवन की महत्वाकांक्षा पूरी होने के संक्षिप्त समाचार से शैक का शरीर एक स्पन्दन से सिहर उठा। स्वयं उसके और परिवार के प्रयत्नों से भरती के महकमे में उसके लिये लेफ्टिनेण्ट के ओहदे की मंजूरी की खबर थी और उसके लिये सोमवार को सुबह लखनऊ में मौजूद होना ज़रूरी था।

जुलाई के पहले सप्ताह में वर्षा आरम्भ हो जाने पर नैनीताल से नीचे जाने वालों का प्रवाह खूब बढ़ जाता है। पैट्रौल की तंगी के कारण लारियों की संख्या कम हो जाने से नैनीताल से काठगोदाम पहुँचना समस्या बन जाता है। इज़्ज़तदार लोगों के लिये यह समस्या और भी कठिन है। ड्राइवर की बगल में एक ही सीट रहती है, जिसपर बैठने से आदमी साधारण से ऊँचा और भिन्न समझा जा सकता है।

शैक अपना सामान ले दो बजे से मोटरों के अड्डे पर मौजूद था। अनेक लारियाँ केवल फौज के गोरों के लिये ही थीं। दूसरी लारियों में ड्राइवर के साथ की जगह का टिकट पहाड़ की उतराई में चक्कर आने से डरने वाले पहले से खरीद चुके थे। इस इज़्ज़त की जगह के लिये

दो घण्टे तक तड़पने के बाद शैक एक रुपया बारह आने की जगह सात रुपये दे एक कार में काठगोदाम पहुँचा।

काठगोदाम से चलनेवाली गाड़ी में तीन-चौथाई स्थान पहले और दूसरे दर्जे के मुसाफिरों के लिये, फी मुसाफिर सो सकने लायक जगह के हिसाब से उनके खाने-पीने के लिये अलग गाड़ी के साथ, सुरक्षित था। शेष जगह में तीसरे दर्जे के मुसाफिर, जो संख्या में पहले और दूसरे दर्जे के मुसाफिरों से सौगुने थे, शहद की मक्खियों की भाँति एक के ऊपर एक लद रहे थे।

इस समस्या की ओर शैक का ध्यान नहीं गया। तीसरे दर्जे में सफर करने वाले काले आदमियों से उसे सरोकार भी न था। लपक कर वह टिकट की खिड़की पर पहुँचा—'वन सेकण्ड क्लास प्लीज़!' बटुआ खोल उसने अधिकार के स्वर में माँग की। खिड़की के तंग झरोखे से दिखाई दे रही बाबू की मुद्रा स्थिर रही। 'सर, देयर्स नो सीट! ऑल दि बर्थ्स हैव बीन सोल्ड!' (जनाब, कोई जगह शेष नहीं सब जगह बिक चुकी हैं!) बाबू ने स्थिर भाव से उत्तर दिया।

शैक निराशा से चुप रह गया परन्तु अपने को सँभाल और भी अधिक गम्भीर स्वर से, बटुए में हाथ डाल उसने कहा—"आल राइट, फर्स्ट क्लास!" बाबू अब भी विचलित न हुआ—"फर्स्ट क्लास के टिकिट भी समाप्त हो चुके हैं!"

नैनीताल की शीतल कोहरा-मिली वायु से सहसा काठगोदाम की गरमी और धूप में आने से शैक के चेहरे पर पसीने की बूँदें झलक आई थीं। बाबू की तटस्थ मुद्रा और निराशापूर्ण बात से वह बह उठीं। सेकण्ड क्लास के टिकट की कीमत तेरह रुपये आठ आने के साथ पाँच रुपये का नोट बख्शीश के रूप में आगे बढ़ा कर शैक ने दुबारा टिकट के लिये अनुरोध किया। बाबू के स्वर में सौजन्य आ गया "अफसोस है!"—बाबू ने उत्तर दिया—"आधी से अधिक जगह तो

फौजी अफसरों के लिये पहले से घिरी रहती है। जगह है ही नहीं। स्टेशन मास्टर का हुक्म टिकिट बेचने का नहीं है। हो सके तो तीसरे दर्जे का टिकिट ले लीजिये, वर्ना शायद वह भी न मिले।''

अपमान और परेशानी में शैक तीसरे दर्जे की खिड़की की ओर गया। टिकट वास्तव में नहीं मिल रहा था। भीड़ को चीर कर खिड़की तक पहुँचना सम्भव न था। काले आदमियों के मैले वस्त्रों और पसीने की गन्ध से साँस घुट रही थी। लेकिन टिकट लिये बिना और सफ़र किये बिना चारा न था। अगले दिन सुबह लखनऊ न पहुँचने का अर्थ था जीवन की सफलता की आशा का डूब जाना। हाथ से निकले जाते जीवन के अवलम्ब को पकड़ पाने के लिये शैक उस दुर्गन्ध से उबकाई पैदा करने वाली भीड़ में धँस पड़ा।

अँग्रेज़ी में बहस कर जब वह टिकट लेकर बाहर निकला, उसकी कमीज़ और पतलून बेलन से निकली ईख की तरह मैली और विरूप हो चुकी थी। मोटर के ड्राइवर तथा क्लीनर और उसमें बहुत कम अन्तर रह गया। गाड़ी अभी प्लेटफार्म पर नहीं लगी थी परन्तु भीड़ और असबाब के जमाव के कारण ठोकर या धक्का खाये बिना दो कदम चल सकना कठिन था।

भोजीपुरा में रात के समय कुली नहीं मिलते। इसलिये भोजीपुरा-लखनऊ लाइन के मुसाफिर इस गाड़ी से कटकर सीधी लखनऊ जाने वाली गाड़ी में जुड़ने वाले डिब्बों में बैठने के लिये प्लेटफार्म के अगले भाग पर जमा हो रहे थे। प्रत्येक मुसाफिर जानता था, जमा होने वाले सब मुसाफ़िरों के लिये गाड़ी में जगह नहीं। जरा-सी सुस्ती, तनिक-सी शिथिलता के परिणाम में वही गाड़ी से रह जायगा। प्रत्येक मुसाफिर आवश्यक समझता था कि दूसरों से पहले वह गाड़ी में घुसे और अपने स्त्री बच्चों को भीतर कर ले। परिणाम में प्रत्येक मुसाफिर दूसरे को शत्रु समझ रहा था। हृदय में भरी प्रतिद्वन्द्विता और प्रतिहिंसा से भीड़ सन्ना रही थी।

प्लेटफार्म के पश्चिम की ओर से धक्-धक् , छुक-छुक करता हुआ इंजन गाड़ी को प्लेटफार्म पर ढकेले आ रहा था। गाड़ी रुकने से पहले ही मुसाफिर दरवाज़े खोलने की परवाह न कर खिड़कियों से गाड़ी के भीतर कूदने लगे।

जब तक शैक पसीने से सराबोर टिकट हाथ में ले, लखनऊ जाने वाले डिब्बे के सम्मुख पहुँचे, गाड़ी भर चुकी थी। कुली फर्स्ट और सेकण्ड क्लास के मुसाफिरों के बिस्तर लगा रहे थे और मुसाफिर निश्चिन्त भाव से अपने डिब्बे के सामने टहल रहे थे। शैक की दृष्टि उस ओर गई। उसने अनुभव किया, वह स्वयं घोंसले से गिर गये पत्ती की भाँति असहाय था। लपक कर वह सीधे लखनऊ जाने वाले डिब्बे के सम्मुख पहुँचा। उसके दो सूटकेस और होल्डाल अब भी प्लेटफार्म पर पड़े थे और कुली का पता नहीं। वह शायद पहले फर्स्ट और सेकण्ड क्लास के मुसाफिरों का असबाब चढ़ा रहा था। भरी हुई गाड़ी के दरवाजों से अब भी मुसाफिर चिपट रहे थे।

प्रतिष्ठा और औचित्य का विचार छोड़ शैक अपना सामान उठा खिड़की से भीतर ढकेलने लगा। भीतर बैठे मुसाफिर सामान की राह रोक रहे थे और शैक उसे भीतर ठूँस रहा था। दोनों ओर से हाथों और शब्दों की शक्ति का भी उपयोग हो रहा था। शैक की धमकी बेकार हो रही थी। भीतर भीड़ में पिसते किसी मुसाफिर ने सिफारिश की—"अरे, भाई, आने दो। किसी तरह मिल-जुल कर मुसीबत का वक्त काटना है।" शैक का सामान भीतर थाम लिया गया। वह दरवाजे की राह पिल पड़ा। पीछे से आने वाले धक्के ने उसे किसी तरह भीतर पहुँचा दिया। इस समय काले आदमियों के शरीर की दुर्गन्ध और मैल की ओर उसका ध्यान न गया। भीतर धँस पाने के मल्ल युद्ध से उसके फेफड़े धौंकनी की भाँति चल रहे थे। खूब सटकर चौबीस आदमियों के बैठने की जगह में ढेरों असबाब और चालीस

आदमी भर चुके थे। शैक किसी तरह एक पाँव गाड़ी के फर्श पर, दूसरा अपने सूटकेस पर रखे, ऊपर असबाब रखने की जगह थामे खड़ा था। अब भी प्लेटफार्म पर से गाड़ी के भीतर धँसने का यत्न करने वाले और ढेरों असबाब लिये गाड़ी में चढ़ पाने के लिये व्याकुलता से छटपटाते मुसाफ़िर मौजूद थे।

बन्द गले का सफेद कोट-पतलून पहने, हाथ में टिकट काटने की मशीन लिये एक टिकट बाबू आया। उनके पीछे ऊँचे और चौड़े डील का एक अङ्गरेज़ मुँह में दबे पाइप से धुआँ छोड़ता खड़ा था। टिकट बाबू ने गाड़ी के मुसाफिरों को बाहर निकल कर साहब के खानसामे और बैरे के लिये जगह करने का हुक्म दिया। मुसाफिर सहम गये। तीन-चार बहुत ही निरीह मुसाफिर टिकट बाबू के हाथ थाम कर नीचे खींचने से अपनी गठरी-मुटरी छाती से चिपकाये, कातर आँखों से देखते गाड़ी से उतर गये। साहब लोगों के खानसामे और बैरे अपना असबाब गाड़ी में ढकेल भीतर चढ़ने लगे। फर्स्ट और सेकण्ड क्लास में आराम से बैठे साहब लोगों के अर्दलियों और नौकरों का उनके साथ पहुँचना ज़रूरी था। छः अर्दली, खानसामे अपने बाल-बच्चों समेत आ पहुँचे। शैक को अपना असबाब हटा कर जगह करने के लिये कहा गया। यह बात शैक के सहन की सीमा को लाँघ गई। "क्या दूसरे मुसाफिर ने टिकट नहीं खरीदा है?" तैश में शैक ने इन्तज़ाम कराने वाले बाबू को उत्तर दिया।

"टिकट का कोई सवाल नहीं,"—उसे उत्तर मिला "टिकट साहब के नौकरों ने भी तो ख़रीदे हैं। इनके लिये जगह की ज़रूरत नहीं है?"

जगह न खाली करने के कारण शैक को गाड़ी से उतर जाने की धमकी दी गई। उसके अड़ जाने पर साहब के नौकरों ने ही उसका सामान एक तरफ़ हटा दिया। उसके देखते दूसरे मुसाफिरों को खड़ा कर साहब लोगों के छः नौकरों के लिये बैठने की जगह कर दी गई।

बैरे और अर्दली लोग बैठ कर काले आदमियों के भेड़, बकरी की तरह गाड़ी में भर जाने की शिकायत करने लगे।

शैक बिंधा बैठा था। उसे जान पड़ा—जैसे यह सब लांछन उसपर ही लगाया जा रहा हो। 'और तुम खुद क्या हो?'—गुस्से में उसने एक अर्दली से घूर कर पूछा। 'हैं क्या?'—अर्दली ने उत्तर दिया। 'यही तो काले आदमी की आदत है कि एक-दूसरे को देख नहीं सकता दूसरे को देखकर जलता है। काले आदमी में एका बिलकुल नहीं। इनसाफ़ है तो साहब लोग में!'

एक के बाद दूसरा बैरा और अर्दली अपने साहब के रोब और उदारता का बखान करने लगा। दूसरे मुसाफ़िरों के लिये इसका चाहे जो अर्थ रहा हो, शैक इसे व्यक्तिगत आक्षेप समझ रहा था। उसके लिये इसका अर्थ था—तुम काले आदमी हो, तुम साहब बन कर भी साहब की बराबरी नहीं कर सकते।

स्थान की तङ्गी के कारण एक साहब के बैरे का एक सफेदपोश सज्जन से, जो तङ्ग जगह में किसी तरह सिमिट कर बैठे थे, जगह के बारे में झगड़ा हो गया। इस अन्याय के विरोध में चुप रहना शैक के लिये सम्भव न रहा। उसने बैरे को डाँट दिया। बात हिन्दुस्तानी में शुरू कर अँग्रेज़ी में बोलने लगा। अँग्रेज़ की खिदमत करने वाला बैरा काले आदमी की डाँट बरदाश्त करने के लिये तैयार न था। अधिक कुछ सुने और समझे बिना ही उसने जवाब दिया—'बड़े आये अँग्रेज़ी बोल के साहब बनने वाले! पतलून पहन कर दो लफ़्ज़ अँग्रेज़ी क्या सीख ली, साहब बन गये! ऐसे बीसियों देखे हैं, हमने डेहरी पर सिर रगड़ते!'

बैरे की इस गाली से शैक का ख़ून उबल उठा। वह गाली उसके व्यक्तित्व को न थी। परिस्थितियों के कारण वह अपने व्यक्तित्व को एक ओर रख चुका था। वह गाली थी उसकी नस्ल को, जिससे छूटने,

बचपाने या भाग जाने का उपाय न था। फिर गाली दे रहा था एक कमीना काला आदमी ! बौखला कर शैक बैरे पर हाथ छोड़ बैठा। लोगों के बीच-बचाव के लिये आ पड़ने पर भी वह सीना उभारे और घूँसा ताने कहता चला गया—"जा अपने साहब को बुला ला ! साहब के जूते क्या उठाने लगा है, साहब का भी बाप बन गया !" गाड़ी में सन्नाटा छा गया और फिर धीरे-धीरे फुसफुसाहट से बैरों की गुस्ताखी की आलोचना होने लगी।

हलद्वानी स्टेशन पर गाड़ी थमते ही बैरा अपने साहब के यहाँ दुहाई देने पहुँचा। स्टेशन से गाड़ी छूटने को ही थी एक स्टेशन बाबू बैरे के साथ दो कान्स्टेबल लेकर आये और शैक को हिरासत में ले गाड़ी से उतर जाने को कहा। बैरे के साहब अब भी दस कदम पीछे खड़े शान्ति से अपने पाइप से धुआँ उड़ा रहे थे।

क्रोध से आँखें लाल किये, मुँह से कुछ बोले बिना शैक अपनी आस्तीन की बाँहें चढ़ाता असबाब सहित गाड़ी से उतर आया। सुबह पहुँच नयी नौकरी पर हाज़िर होने का ध्यान उसे न रहा।

× × × ×

दारोगा साहब रपट का रजिस्टर फर्श पर पटक बिगड़ रहे थे—"जब रपट लिखाने वाला फरियादी ही नहीं तो हम लिखें क्या तुम्हारा सिर ?"

शैक का रूप, रंग और ढंग देख दारोगा साहब ने उसे बैठने के लिये कुर्सी दी और एक गिलास पानी और डिबिया से पान पेश किया। स्वयं दो बीड़े पान मुँह में दबाते हुये दारोगा साहब ने पूछा—"आखिर आप पढ़े-लिखे शरीफ आदमी, उस कमीने के मुँह लगे क्योंकर ?"

सान्त्वना पा शैक ने कहा—"क्या अर्ज करूँ जनाब ! काला आदमी कहकर गाली दे रहा था !"

शैक को हिरासत में लेनेवाला कान्स्टेबल सामने खड़ा था। दारोगा साहब का रुख देख उसने कहा—"और सारा आपुन खुद तवे का-सा काला रहा !........ओ कौन अँग्रेज रहा ! बहुत होय, देशी किरस्टान रहा होय !"

उगालदान में पीक छोड़ बुजुर्गियत के अधिकार से दारोगा साहब ने फर्माया—"अरे भाई, इसी को तो कहते हैं, जवानी बावली होती है। आपको काला आदमी कहा, तो सुन लेते ! आखिर कौम और नस्ल से तो हम लोग काले ही हैं। आप काले हैं, हम काले हैं और वह भी साला काला ! उस साले को अपनी नौकरी से मतलब, हमें अपनी रोटी-दाल से मतलब। आप खयाल कीजिये अपनी रोजी का। वल्लाह काले आदमी की गाली से चिढ़ने लगें तो हो चुका। जो सब की गाली, वह किसी की गाली नहीं। अपनी-अपनी जगह कोई अपने को काला आदमी नहीं मानता और एक में मिलाकर सभी काले ! सो उसमें क्या !"

दारोगा साहब के समर्थन में सिर हिलाकर कान्स्टेबल ने कहा—"ठीक तो कहते हैं हुजूर, और क्या ? कोई अपने को गाली दे, ससुर का सिर फोड़ दें ! काले आदमी की क्या गाली ?" उई तो जात ठहरी।"

शैक पर जैसे घड़ा भर पानी पड़ गया ! वह क्या उत्तर दे ? लेफ्टीनेण्ट के ओहदे की नौकरी क्या यों ही हाथ से गई....इन्हीं काले आदमियों के कारण यह जात का कालापन कैसे धुले ?

४

समाधि की धूल

"इनके बारे में तो सुना था—बड़े भले आदमी हैं, बहुत पढ़े लिखे हैं, अमृतसर के किसी कारखाने में मैनेजर हैं। ससुराल का ध्यान कर घबराहट होती थी। सुना था—बज्र दिहात है; पहाड़ में व्यास नदी के किनारे! रेल तो क्या, नदी पार मोटर-लॉरी भी नहीं जाती, निराले रीति-रिवाज़ हैं। छोटे भैया साथ थे। बेर-बेर पूछते जाते—'जल या खाने को कुछ चाहिये? गरमी तो नहीं लग रही? कुछ और ज़रूरत हो तो कहो?' ओढ़नियों और फुलवारियों की तहों में यों लिपटी थी कि किसी तरह सांस भर आ रही थी। लज्जा के मारे बोल भी न पाती। सिर हिलाकर रह जाती।

मोटर लॉरी रुकी। नायन ने उलझ गये कपड़ों को सुलझा, कंधे को सहारा दे, लॉरी से उतार पालकी में बैठा दिया। नदी पर नाव और नाव पर पालकी, ऐसे नदी पार कर कुछ दूर गये। बरात के साथ बाजे बज रहे थे। इनके अतिरिक्त और भी बाजों का स्वर सुनाई दिया। बरात के साथ के बाजों का स्वर ऊँचा होगया। समझा—पहुँच गये।

बाजे सब हमारे ही स्वागत में बज रहे थे। यों तो जो होना था, हो चुका था। मैं अब इसी घर की थी परन्तु द्वार पर पहुँचते कनपटियों से पसीने की धारें एड़ी तक पहुँचने लगीं। हृदय की गति बढ़ गई। बाजों की तुमुल ध्वनि, पड़ाकों और बन्दूकों का शब्द, मंगलाचरण गाती स्त्रियों के कण्ठ का सम्मिलित, अस्पष्ट परन्तु ऊँचा स्वर, पुरुषों

की झुंझलाहट, चिंता और हुकूमत भरी आवाज़ें, विराट समारोह हो रहा था। मेरे छोटे से हृदय में मेरा संसार बदल रहा था। कभी से मैं उसकी प्रतीक्षा और तैयारी कर रही थी। वह सब तैयारी व्यर्थ रही, हृदय आतंक से बैठा जा रहा था, सिर में चक्कर आने लगा।

गीत गाती स्त्रियों के गिरोह ने पालकी को घेर लिया। पर्दा उठा बांह थाम मुझे बाहर आने का संकेत किया गया। काँपते पैरों से मैं द्वार की ओर सरकने लगी। कुछ गोलमाल सा सुनाई दिया। स्त्रियों का गाना रुक गया? 'पहले समाधि पूजी जायगी।....इधर चलो न! हाँ-हाँ चलो!' मेरे कंधे थामे स्त्रियों ने मुझे घुमा दिया।

गोलमाल में भैया का उत्तेजित स्वर सुनाई दिया—'यह सब मसान-मढ़ैया पूजने के खुराफ़ात नहीं होंगे। क्या तमाशा हो रहा है?' उन्हें उत्तेजित स्वर में उत्तर मिलने लगे—'यह तुम्हारा घर नहीं है। हमारे रीति-रिवाज़ कैसे नहीं होंगे।' किसी ने शान्ति से समझाया—'भाई पीर-मसान की पूजा नहीं है। गाँव का ऐतिहासिक स्थान है। नये ब्याहे लड़के-लड़की के लिये आशीर्वाद की कामना से ऐसा किया जाता है। इसमें हर्ज़ की कोई बात नहीं है।' मनमें आया, भैया व्यर्थ में झंझट कर रहे हैं। जब मुझे दे ही डाला तो अब तुम्हारा अधिकार क्या? स्त्रियों का गिरोह चलने लगा। उसके बीच कंधों से थामकर मुझे चलाया जा रहा था।

कुछ लड़के-लड़कियाँ उत्साह से भागते हुये आगे-आगे चल रहे थे। स्त्रियों ने हथेलियों पर जल के लोटे और पूजा के सामान की थालियाँ ली हुई थीं। हमारे आंचल के छोर से दुपट्टे के छोर की गाँठ बांधे 'ये' भी चल रहे थे। स्त्रियां बेमेल तीखे स्वर में गाती जा रही थीं। स्त्रियों की किलकिलाहट और बच्चों की चीखों के बीच समाधि की आरती उतारी गई। हम दोनों ने समाधि पर माथा टेका। लौटकर द्वार-चार और दूसरी रीतियाँ बहुत देर तक होती रहीं।

सिमटी बैठी थी। दिनभर की थकावट से शरीर जकड़ सा रहा था। आंखे नींद से भारी थीं परन्तु मुंद न पातीं, जैसे उनमें तिनके अड़े हों। सबसे उत्कट क्षण अभी आने को था।

बिना आहट किये आ वे मेरे समीप पलंग पर बैठ गये। मैं और सिमिट गई। कुछ सोचकर उन्होंने पूछा—'रास्ते में कोई तक़लीफ़ तो नहीं हुई ?' चुप रही। स्वयम् ही कहने लगे—'इस सफ़र से थकावट बहुत हो जाती है। आराम से लेट जाओ न !' लज्जा से मेरा सिर झुक गया।

कुछ और सोचकर बोले—'समाधि की पूजा से भैया को बुरा लगा। पर उसमें ऐसी बात नहीं है। कोई पीर-मसान नहीं हैं। लोग उसे 'प्रेमियों की समाधि' या 'बल्लू चमेली की समाधि' कहते हैं। यहाँ इस समाधि की बड़ी मानता और महत्व है। यह पत्थर की पूजा नहीं, भाव की आराधना है।'

तकिया बगल में ले वे करवट से होगये—'आराम से बैठो !'—उन्होंने आग्रह किया, परन्तु मैं लजा कर वैसे ही सिमटी रही।

सुनाने लगे—

"यह बल्लू-चमेली की समाधि बजती है।

"यहाँ से दस कोस ऊपर पहाड़ में एक गाँव है 'पतिया'। बल्लू उसी गाँव के गूजर रद्दू का बेटा था। भला सा जवान। गरीब माँ-बाप का बेटा। चीड़ के पेड़ों की घाटी में पतिया है, उस पार रेहड़ में डामू की बस्ती। डामू के राधे साह का बड़ा नाम था। तीस-चालीस कोस में उनकी हवेली की धूम है। चमेली राधे साह की बेटी थी, ओस में भीगी, सुन्दर, निर्मल और सुगंध से भरपूर चमेली की कली।

"बल्लू अपने गाँव और डामू के गोरू चराता था। एक रोज़ उसने बीच की घाटी की बावड़ी पर चमेली को देखा। देखा चाहे पहले भी हो; पर किसी क्षण का देखा कुछ और ही होजाता है। हो सकता

है, किसी पिछले जन्म के संस्कार जाग उठे। बल्लू चमेली के पीछे हो लिया।

"पास पड़ोस में चर्चा होने लगी। चमेली का घर से निकलना बन्द होगया। बल्लू अपने गोरू छोड़ दिन-रात डामू की बस्ती की परिक्रमा करने लगा। दुपहर की वायु से सांय-सांय करती चीड़ों के नीचे, घटाटोप अंधेरी—कालीरात में, डामू के नीचे श्मशान से और मूसलाधार वर्षा में, किसी भी समय चमेली को टेरती, बल्लू की बांसुरी की तान सुनाई दे जाती।

"राधेसाह अपना अपमान समझ गूजर के लड़के पर बहुत बिगड़े। रद्दू के छप्पर में आग लगवा दी। उनके आदमी लट्ठ लिये बल्लू को मारने के लिये फिरते रहते। कहते हैं—बल्लू के गोरू बल्लू को घेरकर बैठ जाते और वह प्रेम का देवता उन्हें प्रेम की बंशी सुनाता। एक दिन राधे साह के नौकर ने बल्लू पर लट्ठ उठाया। बल्लू खड़ा हँसता रहा। डामू के ही एक सांड़ ने उठाकर नौकर को चट्टान पर दे मारा। उसकी दो पसली टूट गईं।

"चमेली पर कड़ा पहरा था; कभी हवेली के आँगन से निकलने न पाये। राधे साह ने लड़की की सगाई, भिजवा गाँव के मट्टूसाह के लड़के से करदी। प्रेमी के मनकी आह लगी। लड़के को साँप डस गया।

"यहाँ से चार कोस ऊपर, नदी किनारे 'जलेश्वर' का स्थान है। बैसाखी के दिन जलेश्वर के पूजन का बड़ा महात्म और पुण्य है। वहाँ बैसाखी का बड़ा भारी मेला लगता है। दूर-दूर से बिसाती, हलवाई और तमाशे वाले आते हैं। झूले पड़ते हैं, रहटे लगते हैं। दस पन्द्रह कोस के भीतर कोई आदमी नहीं, जो मेले में न आता हो।

"मेले में राधे साह लड़की को ले पूजन कर मनौती मानने आये। बल्लू की तो सुरत ही चमेली में लगी थी। उसके हृदय से कैसे छिप

सकता था। अदृश्य तार से बँधा वह भी नंगे पाँव से चट्टानों पर लहू टपकाता, बंसी बजाता मेले में पहुँचा।

"चमेली पूजन के लिये नये कपड़े पहिनकर आई थी। काली सूफ़ की तंग सुत्थन (पायजामा) गुलाबी कुरता और पीली ओढ़नी में गोटा टँका हुआ। माँ, भावजों और सहेलियों से घिरी वह बिसाती के यहाँ टिकुली, बुन्दे खरीद रही थी। बल्लू की दृष्टि उस पर पड़ी और पुकार बैठा—'चमेली !'

"माँ, भावजें और सहेलियाँ चमेली को दूसरी ओर लेगईं। बल्लू पालतू कुत्ते की भाँति उनके पीछे-पीछे चला। स्त्रियों ने उसे गालियाँ दीं। बल्लू चुप रहा परन्तु चमेली को एक बेर देख पीछा न छोड़ा।

'धर्म-स्थान का मेला ठहरा। सब भले घरों की बहू-बेटियाँ वहाँ पूजन के लिये आती हैं। ऐसा अनाचार वहाँ कैसे सहा जाय ? लोग जमा होगये। बल्लू को डांट फटकार और नसीहत करने लगे। बल्लू के मनमें प्रेम का आनन्द समा गया था। वह खड़ा गाली, लानत और फटकार सुन मुस्कराता रहा। केवल चमेली को उसने अपनी आँखों से ओट न होने दिया।

"चमेली की माँ और सहेलियाँ उसे ले शिवपूजन के लिये मन्दिर में गईं। वह बावला भी मन्दिर के भीतर धँसने लगा। प्रेम भगवान के सच्चे पुजारी के लिये ही भगवान के चरणों में स्थान न था। उसे धक्के दे बाहर निकाल दिया गया। वह उठा और फिर भीतर चला। राधे साह ने गाँव के लोगों को पुकारा। बल्लू पर लात, घूँसे और पत्थर पड़ने लगे। उसके माथे का खून एड़ी तक बह गया। चमेली को देख पाने के लिये मन्दिर में घुसने के प्रयत्न से वह न हटा।

"मन्दिर के भीतर कोने में खड़ी सहेलियों से घिरी चमेली यह देख रही थी। कहते हैं—उस युग में हर के लिये सती ने तपस्या की थी। उसीका बदला हर, बल्लू के रूप में तपस्या कर, दे रहे थे। सती

चमेली से न रहा गया। आँसू बहाते हुये अपनी माँ की बगल से आकर उसने कहा—'इतना ही मेरा प्यार है तो नदी में जाकर डूब मर !.... क्यों मेरी जग हँसाई करा रहा है ?'

"ऊपर पहाड़ों से गिरती-पड़ती व्यास जलेश्वर में आती है। जल तीर जैसा तेज़ और बरफ़ जैसा ठण्डा। नदी बड़ी-बड़ी और पैनी चट्टानों से भरी है। नदी की धार इन चट्टानों से टकराती है तो बाँसों ऊँची फुहारें उठती रहती हैं। नदी का पाट फेन से भरा रहता है। मनुष्य तो क्या ; यदि समूचे वृक्ष का कुन्दा भी उसमें गिर जाय तो छिपटी उड़ जाँय।

"चमेली की बात सुन बल्लू जैसे क्षण भर को सहम गया, फिर नदी की ओर मुँह कर दौड़ पड़ा। सब लोगों के देखते-देखते वह नदी में कूद पड़ा। अभी लोगों की भौंचक दृष्टि उसी ओर थी कि जैसे हवा में बिजली कौंद गई, बल्लू के कदमों पर चमेली दौड़ती दिखाई दी। उतनी ही तेज और उससे भी अधिक उतावली। कोई कुछ समझ या बोल सके, इससे पहले ही वह भी नदी के उमड़ते फेन में कूद पड़ी।

"विस्मय-स्तब्ध बेबस लोगों की पक्तियाँ नदी किनारे खड़ी थीं पर कोई क्या कर सकता था ?

"प्रेम की महिमा····! अगले दिन लोगों ने देखा—यहाँ एक चट्टान पर एक-दूसरे की बाहों में लिपटे, दोनों के शरीर रखे हैं। भक्ति-भाव से उठा लोगों ने उन्हें सद्गति करने के लिये चिता दी। परन्तु उनकी तो सद्गति पहले ही हो चुकी थी। यहीं उनकी समाधि बनाई गई। अब जलेश्वर के पूजन के साथ इस समाधि की भी पूजा होती है। ब्याह के पश्चात्, द्वार-प्रवेश से पहले, नयी आई बहू के साथ वर 'प्रेमियों की समाधि' की पूजा करता है। लोगों का विश्वास है, इससे उनमें कभी प्रेम-क्षय नहीं होता। जिन घरों में कलह रहती है, वहाँ लोग समाधि

की धूल लेजाकर रख लेते हैं। इससे पति-पत्नी की कलह दूर हो जाती है।

"अलौकिक प्रेमियों से संतत प्रेम का वरदान पाने के लिये ही वह पूजा की गई थी।"

सांस रोके मैं सुन रही थी। प्रतिक्षण उनके स्वर से बढ़ता परिचय उनके स्वर के माधुर्य को बढ़ाता जा रहा था, बात समाप्त हो जाने पर हृदय से एक गहरा निश्वास उठा और मेरा सिर प्रेम के माधुर्य की स्मृति और नवीन अनुराग से झुक गया।

उन्होंने मेरे कंधे पर हाथ रख दिया। माधुर्य की तीव्रता से मैं कण्टकित हो उठी। आर्द्र स्वर में उन्होंने पूछा—'इससे पहले भी कभी तुमने प्रेम किया है?'

मेरा श्वास रुकने लगा—'अक्षय और सन्तत प्रेम का वरदान पा, अनुराग की प्रथम घड़ी में ही प्रेमी को धोखा दे जीवन को कैसे विषाक्त करदूं?' सिर झुकाये चुप रह गई। आँसू छलक आये और भी तरल अनुरोध से उन्होंने बाँह मेरी पीठ पर रख दोहराया—'बोलो!'

होंठ काट आँसुओं का घूँट भर उत्तर दिया—'प्रेम करना सीखा था!'

× × ×

कितनी ही बेर समाधि पर अनन्त श्रद्धा से प्रार्थना कर, समाधि की धूल ला घर के कोने-कोने में रख चुकी हूँ.......पर उस धूल को उनके हृदय में कैसे रख पाऊँ?........

रोटी का मोल

रामगोपाल छुट्टनजी-माधोमल की आढ़त की कोठी में मुनीम है। वे दिन कुछ ऐसे ही थे। आढ़त की कोठी का गरिमामय, गम्भीर वातावरण चिंतापूर्ण निश्क्रियता, आशंका और उत्तेजना में बदल गया। ज़ाहिरा कारोबार एक तरह से चौपट था। कई महीने चढ़ा-चढ़ी और तेज़ी की ले-दे रही। फिर अचानक कण्ट्रोल की अफ़वाह सच्ची हो गई। जैसे मदरसे में छोटी जमात के लड़के मास्टर साहब की ग़ैर-हाज़िरी में खूब मार-पीट और धमा-चौकड़ी मचा रहे हों, अचानक मास्टर साहब आकर मेज़ पर बेंत फटकार दें, लड़के आशंका से सन्नाटा खींच जायँ लेकिन दिल में गुब्बार भरा रहे; उत्तेजना उमड़ती रहे। ठीक यही हाल बाज़ार का था।

लाजाजी मसनद के सहारे बैठे अँगुलियाँ चटखाते, जाने क्या-क्या सोचा करते? कभी बड़े मुनीम हरलाल को संकेत से बुला कान में कुछ बातचीत कर लेते। फ़ोन की घण्टी भी लगातार टन-टन नहीं करती। दलालों का अँगोछे की आड़ में लालाजी और हरलाल के हाथ की अँगुलियाँ थाम-थाम भाव के लिए झगड़ना अब न होता। कोठी की कल-कल, कायँ-कायँ बन्द हो गई। कहार पानी के डोल और पान के बीड़े लाने से परेशान नहीं होता। फ़ोन पर भाव नहीं पुकारे जाते। इतना ही इशारा होता—'कहो तो फिर आवें!' कोई दलाल आता तो अधूरी-अधूरी बातें होतीं। इन आशंकित स्वरों और अधूरी बातों में और भी अधिक उत्तेजना रहती।

रामगोपाल अपनी जगह पर बैठा गरदन उचका देता। खातों में बीजक चढ़ते रहने पर भी उसके कान उस ओर खिंच जाते। वह कोठी में सबसे छोटा मुनीम था। बहुत-सी बातें उसे मालूम न थीं परन्तु शंकित और उत्तेजित होने लायक बहुत कुछ वह जानता भी था। वह जानता था, भदोरिया और गौरी में सेठजी ने हाल में तीस-तीस हज़ार मन गेहूँ और चना भरा है। मुनीम हरलाल के साथ वह भी वहाँ गया था। कानपुर में भी अपने कई कोठे हैं। कण्ट्रोल की वजह से ऐसा जान पड़ता, मानो कोठी की सम्पत्ति पर शत्रुओं का आक्रमण हो रहा है। लालाजी और मुनीम लोग शत्रुओं से घिरकर जी-जान से मुक़ाबिले के लिये तैयार हैं।

मँझले मुनीम किसनलाल की आदत थी, सुरती मलते-मलते कोई न कोई चटपटी बात शुरू कर देते। वे कोठी के संवाददाता थे। बड़े मुनीम हरलाल बाज़ वक्त उन्हें 'नारद महाराज' कहकर मज़ाक़ भी कर देते। किसनलाल कभी चमनगंज में किसी हिन्दू औरत के मुसलमानों द्वारा इक्के पर भगा लिये जाने की कहानी, कभी 'तिलक-हाल' में कांग्रेस की तलाशी की और कभी 'हटिया' में कांग्रेस के वालण्टियरों पर लाठी-चार्ज होने की खबर सुना देते। इन बातों का चर्चा किसनलाल के सुरती मलते रहने तक ही रह पाता। कार बार [illegible] कोठी में राजनीति का क्या स्थान? ये बातें है, आवारा और बेकारों की। पर अब किसनलाल 'कण्ट्रोल और राशनिङ्ग' की ख़बर सुनाते तो लम्बी बहस छिड़ जाती। सेठजी भी बोलने लगते—'कण्ट्रोल में क्या [illegible] ! अरे भाई, व्यापारी न दाम लगाये, जो दाम [illegible] काई अन्धेर है [illegible] ...कहीं जबरन [illegible] लगते हैं ! बस, नहीं है हमारे पास........है ही नहीं ! जाओ !' हाथ का उँगलियाँ हवा में नचा कर कहते—"उन्हें कोई नफ़ा-नुकसान भरना है? अफ़सरों की अपनी हज़ारों रुपये की तनख्वाहें खरी हैं। गवर्मेंण्ट मनचाहे भाव खरीद

सकती है........ब्यौपारी ऐसे थोड़े ही कर सकता है ? उसे तो बाज़ार-भाव खरीदना, बाज़ार-भाव बेचना ! उसे दाम नहीं मिलेंगे, माल बाज़ार में लायेगा, क्यों ? पड़ा रहने दो साले को। जिसे लेना होगा दाम देगा ?"

हरलाल गाली देकर बोल उठते—"........गवर्मेण्ट क्या खाकर बेच लेगी ? लेगी कहाँ से ? माल तो है ब्यौपारी के हाथ, भाव लगायेगी गवर्मेण्ट—ऐसा कभी हुआ है........सरकार पहले अपना पेट तो भर ले ? करोड़ों मन तो फ़ौज का खर्चा है। कोई अपना पेट काटकर दे दे क्या ? बाज़ार में माल है ही कहाँ जो गवर्मेण्ट खरीद लेगी ?"

किसनलाल बोल उठते—"गाँव-गाँव सरकारी खरीद होने की खबर है।" हरलाल उचक उठते—तुम्हीं न जाओ गाँव से खरीद लाओ ! अरे, जेठ में तो किसान चादर झाड़ बैठता है। यहाँ पूस-माघ में सरकार गाँव से गल्ला खरीदेगी ?"

किसनलाल और छेड़ देते—"गल्ले की जब्ती की भी तो उड़ रही है !" सेठजी तैश में आ जाते—"जब्ती न हो गई, मज़ाक़ हो गया। गल्ले की जब्ती गवर्मेण्ट करेगी ? पहले बजाजे की करे। कपड़े का भाव नहीं चढ़ा है क्या ? एक-एक के पाँच-पाँच हो रहे हैं ? बिसात का माल है। करे गवर्मेण्ट जब्त करे !"

"ऐसा कहीं हो सकता है ?"—हरलाल समाधान करने लगते—"गवर्मेण्ट ऐसा कहीं कर सकती है ? तब तो दुनिया ही पलट जाय। ब्यौपारी के माल की जब्ती करेगी तो टिक्स कहाँ से लेगी गवर्मेण्ट ? गवर्मेण्ट का काम जान-माल की हिफाजत करना है........ऐसा होने लगे तो हुकूमत चल चुकी। यह सब बड़ी-बड़ी मिलें हैं........ये मुनाफा नहीं ले रहीं क्या ?......सबको सरकार जब्त कर सकती है ; करे ? सरकार ! अन्धेर मच जाय........।" अन्याय के प्रतिकार के लिये वे उत्तेजित हो उठते।

रामगोपाल गरदन ऊँची कर सुनता रहता। वह स्वयं भी उत्तेजित हो उठता—बेचारे गल्ले और आढ़त के ब्यौपारियों पर सरकार कितना जुलम कर रही है ! कभी सेठजी कोई कोठा-खत्ती बेच डालते तो खरीद के भाव से वर्तमान भाव की तुलना कर वह मन ही मन उत्साहित हो उठता।

कण्ट्रोल का पहला प्रभाव मिट गया। बाज़ार प्रकट नहीं, गुप्त रूप से चल रहा था और फिर तेज़ी आ रही थी। गेहूँ बारह रुपया मन हुआ और अभी प्रतिदिन पैसा-दो पैसा चढ़ रहा था। दूसरे मुनीमों और रामगोपाल का माहवार खर्च महँगाई की वजह से बढ़ गया था। पहले केवल बीस रुपये महीने उसे मिलते थे, अब सेठजी ने छब्बीस रुपये कर दिये। बीस के छब्बीस हुये, पर हाल पहले से भी बुरा था। तब साढ़े तीन-चार का आटा महीने में निबटता न था, अब वह बात चौदह-पन्द्रह में नहीं हो पाती। सभी चीज़ों के दाम गल्ले की तरह, बल्कि उससे कहीं ऊँचे थे। यह सब संकट झेलकर भी दूकान में बैठते समय तेज़ी की खबर से रामगोपाल को स्फूर्तिमय उत्तेजना होती। कहीं उसके पास भी इस समय रकम होती........एक कोठा कहीं उसने भी ले लिया होता, बीस-पच्चीस हज़ार बन गये होते ! वह नहीं हो सका फिर भी तेज़ी से कौतूहल और स्फूर्ति होती ही थी—वैसे ही जैसे भयंकर बाढ़ का पानी गाँव की गलियों में चढ़ता देख, गाँव के बच्चे नया खेल आया समझ, पुलकित होने लगते हैं।

रामगोपाल गुड़मुरी मारे रजाई में लिपटा पड़ा था। नींद टूट जाने पर जाड़ा-सा मालूम दे रहा था। मन चाह रहा था, तमाम रजाई अपने शरीर पर अच्छी तरह से लपेट ले परन्तु पीठ पीछे सोये भानू के उघर जाने के भय से निश्चल सिमटा पड़ा रहा। सोच रहा था, उठता तो पर जाड़ा है। पिछले बरस वह जल्दी ही उठ जाता

था। बिन्ध्या कुल्ला करने के लिये उसे जल का लोटा दे, चूल्हा सुलगा देती। वह बच्चों के लिये टिकिया सेंकती और रामगोपाल ज़रा आँच ताप लेता। कोठरी में ईंधन का सोंधा-सोंधा धुआँ भर जाने से जाड़ा मालूम न देता। सुबह-सुबह रोटी बन जाती। गरम-गरम खा वह नौ बजे जाकर कोठी खुलवाता। अब सुबह आँच नहीं जल पाती। जले कैसे ? मन ही मन उसने गाली दी—"ईंधन रुपये का चार पसेरी मिल रहा है—ईंधन न हुआ, चन्दन हो गया ! उपलों को क्या आग लगी है ; पैसे के दो ! आटा रुपये का तीन सेर ; पूरा पड़े तो कैसे ?"

रामगोपाल सुबह लैया-चने चबा दूकान चला जाता। बच्चे भी वही चबा लेते या माँ उनके लिये साँझ को शकरकन्दी भून कर रख लेती। दोपहर बाद खूब अबेर से, तीन-चार बजे खाना होता। दोनों जून का एक ही बेर में निबट जाता। घर में जैसे भी निबाह ले पर बाहर दुनिया में आबरू रखना ज़रूरी है। कोई कुली-कहार तो है नहीं, जो चाहे उघारे फिरे ! कोठी में मुनीम है। जाड़े के लिये उसने मोटे सूती चारखाने का कोट सिला लिया।

बिंध्या को सर्दी से खाँसी आने लगती है। उसने कहा, चारखाने का एक सलूका उसके लिये भी हो जाता। गुंजाइश न थी, सो हो नहीं सका। पर कलख रामगोपाल के दिल में बनी थी।

समीप ही दूसरी खाट पर मुनिया को लिये बिंध्या सो रही थी। घर में एक ही रजाई थी, बिंध्या के दहेज की। बिंध्या रजाई उसीकी खटिया पर रख देती। स्वयम् वह एक सूती कम्बल में पुरानी लोई जोड़, मुनिया को सीने से चिपटा, रात काट देती। रामगोपाल सोचता, जाड़ा तो उसे भी लगता होगा, पर करे क्या ? जब तब ख्याल आ जाता और वह मन ही मन रिंधने लगता। इस समय भी रजाई में सिकुड़े ऐसा ही ख़्याल आ रहा था। जान पड़ा, बाहर गली में कोई पुकार रहा है—"भैया रामगोपाल ! ए मुनीमजी ! भैया रामगोपाल हो !

कोठी के कहार लच्छी की आवाज़ थी। किवाड़ों पर खट-खट भी सुनाई दी। रामगोपाल ने उत्तर दिया—"कौन; लच्छी है क्या?" और पाँव में उलझती लाँग सँभाल, किवाड़ खोल पूछा,—"क्या है लच्छी?"

धीमे स्वर में लच्छी ने कहा—"सेठजी ने हवेली पर बुलाया है। बड़े मुनीमजी और किशनलाल भी हैं। सब लोग आधी रात से हैं। बरज़रूरी काम है भैया! तुरतै आ जाओ!....समझे!"

"आते हैं।" बेबसी से रामगोपाल ने उत्तर दिया।

आहट से बिंध्या की भी आँख खुल गई। अपने शरीर का कपड़ा लड़की को ओढ़ाते हुए उसने कहा—"हाय, हाय, किवाड़ तो बन्द कर दो! लड़की को हवा लग जायगी; उसे पहले ही से सर्दी हो रही है।"

रामगोपाल ने किवाड़ बन्द करते हुए कहा—"जल दो, कुल्ला कर लें। सेठजी ने बुला भेजा है।"

बिंध्या उठी तो खाट के नीचे कटोरे से ढँकी लुटिया पाँव लग जाने से लुढ़क गई और कटोरी से कठोर झनकार गूँज उठी। उसके स्वर से रामगोपाल के शरीर में शीत से खड़ी हो रही रोम-राशि और भी सतर्क हो गई। वह भन्ना उठा—"अंधी हो क्या?"

करुण स्वर में बिंध्या ने विरोध किया—"सुबह-सुबह कैसे बोल बोलते हो! अब अँधेरा है तो क्या करूँ? लड़के को दो दिन तो तेल के लिये भेजा। भीड़ में उलटे मार खा कर चला आया, न [illegible] तो क्या दिये में अपना सिर दे दूँ?"

रामगोपाल जल का लोटा ले आँगन में निकल गया। लौटा तो छोटी लड़की गुड़ के लिये जिद कर रही थी। उसे सुना बिंध्या ने कहा—"अब सुबह-सुबह कहाँ रखा है गुड़! कौन ले आता है मिठाई तेरे लिये जो रख दूँ सामने?"

रामगोपाल समझ रहा था, उसी पर ताना है ; पर उत्तर न दिया। कमीज पर रुई की पुरानी बण्डी पहिनी, ऊपर से सूती कोट के बटन बन्द किये और चलने को हुआ। बिंध्या ने अँगोछा बढ़ाकर कहा—"चून निबट गया है। ले आओगे तो आज को होगा !"

सेठजी की हवेली की ड्योढ़ी लाँघ रामगोपाल बैठक में पहुँचा ही था कि शिकायत के स्वर में मुनीम हरलाल ने स्वागत किया—"वाह पण्डित, अच्छे रहे ! अब आ रहे हो ? तुम्हारे भरोसे रहते तो जने क्या हो जाता !"

सेठजी शाल ओढ़े मसनद के सहारे बैठे थे। नींद भरी लाल चिन्तित आँखें एक बार उन्होंने रामगोपाल की ओर उठा दीं। इतना ही उसके लिये पर्याप्त था।

रामगोपाल की उपेक्षा कर सेठजी, बड़े मुनीम और किसनलाल बात करते रहे। हरलाल आयु के कारण पीली पड़ गई आँखों में, अनिद्रा की लाली लिये सफ़ेद मूँछों पर हाथ फेरते हुए कह रहे थे—"बड़ी मुश्किल से गोबिन्दजी को राजी कर पाये भैया ! हाशिम भाई तो टाले दे रहे थे। हमने कही, चोखेलाल की खत्तियों की बात फैल गई तो बाज़ार तीन-चार आने की मद्दी से खुलेगा........सबके दिये जल जायँगे !" फिर बोले—"भाई जो गोबिन्दजी कहें अपना भी समझ लो !"

किसनलाल घुटनों के बल बैठ चादर कंधों पर लपेटते हुए बोले—"चले थे बेटा खत्ती भरने, कम सरियट की सप्लाई के ज़ोर पर। लाख मन चावल 'कण्डम' हो गया। इतने में दम निकल गया।....ब्योपारी के गज भर का सीना होना चाहिये ! बेटा औरों को भी ले डूबते !"

"गोबिन्दजी भी, नाम तो इतना है,"—हरलाल कहने लगे—"पर दिल के कुछ हैं नहीं।....चोखेलाल की बात सुनी, तो लगे हाथ-पैर फूलने ! और फिर बोले—"खिलवा के हाते की खत्ती हम नहीं लेंगे। सुना है दो साल पुरानी है....घुन रही है।"

सेठजी ने आशंका भरी दृष्टि हरलाल की ओर उठाकर पूछा—"तो क्या बिलकुल····?" हाथ बढ़ाकर हरलाल ने कहा—"अजी नहीं, और हुआ भी तो क्या; दो हजार मन····एक खत्ती गई भी तो क्या? बाज़ार में हल्ला हो जाता। दस-बीस हजार मन का क्या पता चलता है इतने में? रुपये में पाई-आधी-पाई····।" दीर्घ निःश्वास से आसन बदल सेठजी बोले—"तो फिर मुनीमजी कहारों को भेजकर ताले बदलवा दो न! हाँ, ज़रा उस कोठे को भी देख लेना····!"

रामगोपाल ने समझा—चोखेलाल अढ़ाई लाख मन चावल की सप्लाई कमसरियट में कर रहे थे। कमसरियट के पेमेण्ट के ज़ोर पर लाला ने बहत्तर कोठे खत्ती का भाव पूस का कर लिया। हुण्डी तरने की तारीख़ आ गई और कमसरियट ने चावल 'कण्डम' कर दिया। सात-आठ लाख मन गेहूँ कोई चीज़ होती है। बाज़ार से गल्ला निकल जाने के कारण भाव चढ़ रहा था। इतना गल्ला एकदम आ जाने से भाव गिरता नहीं तो क्या?·······रामगोपाल के मन में चोखेलाल के प्रति ग्लानि-सी भर गई:—सेठजी का ही दिल था, हाशिम भाई और गोबिन्दजी को मिलाकर सब समेट लिया।

लच्छी और जमना कहारों से ताले उठवा रामगोपाल चोखेलाल के कोठों पर अपने ताले गिरवाने चल दिया। चमनगंज, प्रेमनगर, एलनगंज और लाइनपार अहातों में घूम-घूमकर ताले बदलवाते दो बज गये। रामगोपाल के घुटनों तक और चेहरे पर धूल चढ़ रही थी। सूती कोट से भी पसीना छलकने लगा। चाबियों का गुच्छा काँख में दबाये वह नयागंज से लौट रहा था। बाज़ार में पच्चीस तीस आदमियों की एक टोली लाल कपड़े पर सफ़ेद हँसिये-हथौड़े का झण्डा लिये और बाँस की खपच्चियों पर लगे गत्ते के टुकड़ों पर 'मुनाफ़ा-खोरी बन्द करो! गल्ला-चोरी बन्द करो!' लिखे, घूँसे उठा-उठा बावलों की

तरह खुराफ़ात चिल्ला रहे थे''''मुनाफ़ाखोरों का गल्ला जब्त करो''''
मुकम्मिल रासनिंग हो''''।'

भीड़ में इस हुल्लड़ से रामगोपाल को राह नहीं मिल पा रही थी। परेशानी से उसने कहा—"साले कहीं के चोर-बदमाश!'''' मुनाफ़ा बन्द करो!" मन ही मन उसे चिढ़-सी उठी, मुनाफ़ा बन्द हो जाय, तो दुनिया कैसे चले?

एक गली के मुहाने पर खड़े हो टोली के एक आदमी ने कन्धे से लटका बिगुल बजा दिया और कनस्तर पर खड़े हो दाँयें हाथ का घूंसा उठा लेकचर देने लगा—"भाइयों, हम लोगों का गल्ला कहाँ गया? गल्ला पैदा करने वाले किसान भी दाने-दाने को तरस रहे हैं। तमाम गल्ला मुनाफ़ाखोरों ने समेट लिया। जब हमारे बच्चे भूखे मर रहे हैं, यह लोग लाखों-करोड़ों मन गल्ला कोठों और खत्तियों में भर हमें भूख से तड़पा रहे हैं। इनका मुनाफ़ा कौम की मौत के मोल है। सब गल्ला जब्त होकर गरीबों को ठीक भाव से मिलना चाहिये! भाइयों! मुहल्ले-मुहल्ले गल्ला कमेटियाँ बनाओ। सरकार पर ज़ोर डालो कि गल्ला आपकी कमेटियों की मारफत ठीक भाव पर बिके।"

एक ओर जगह देख रामगोपाल आगे निकल गया। मुनाफ़ाखोरी के खिलाफ़ लेक्चर अब भी चल रहा था। उसके मन में हुआ कि हाथ में चाबियों का भारी गुच्छा उठा, लेक्चर देनेवाले को अँगूठा दिखा दे, ले-ले गल्ला!

रामगोपाल ने सोचा कि दूकान पर चाबी देने जायगा तो और देर होगी; पहले रुपये का आटा घर दे आये। एक दूकान पर जाकर पूछा। बनिये ने भाव बताया, पौने तीन सेर! रामगोपाल को धक्का-सा लगा—"क्या जुल्म करते हो लाला?" उसने अधीर स्वर में पूछा—"एक ही दिन में पाव भर चढ़ा दिया?"

हाथ फैला, बेबसी दिखाते हुए लाला ने उत्तर दिया—"भैया,

जिस भाव पाते हैं, बेचते हैं। बाज़ार में गल्ला है ही नहीं। कहाँ से लायें?"

चाबियों के बोझ को दूसरे हाथ में बदलते हुए रामगोपाल ने साहस किया—"काहे, कण्टोल की दूकान पर तो चार सेर का बिक रहा है?"

"होगा भैया, बिकता होगा"—क्षमा माँगने के ढंग से लाला ने उत्तर दिया—"अपने को तो कण्टोल के भाव मिलता नहीं, देख लो! यहाँ है ही कहाँ? यह चुटकी भर रखा है। चौके में यों ही निबट जायगा।"

ओंठ काटते हुए रामगोपाल ने सोचा, वह ज़रूर कण्ट्रोल की दूकान पर जायगा। सवा सेर का फरक कम नहीं होता!....साले बेईमान कहीं के! दूकान पर चाबियाँ उसने बड़े मुनीमजी के सामने रख दीं। खाते से आँख उठा उन्होंने पूछा—"सब देख-जोख लिया, है न ठीक से?....घर नहीं गये क्या? झपट के हो आओ! फिर तनिक हाशिम भाई के यहाँ काम है, तुरतै आ जाओ!"

भूख और मानसिक क्षोभ के कारण रामगोपाल चुप रह गया। मसनद के सहारे बैठे सेठजी ने उसकी ओर देखकर कहा—"अब कहाँ जाओगे"? फिर हरलाल को सम्बोधन किया—"कहार से कह कर पूड़ी न मँगा दो!" पूड़ी के नाम से रामगोपाल के मुख में पानी आया ही चाहता था कि दिमाग़ में सुबह से भूखे जगन, मुनिया और बिंध्या की याद फिर गई। कुछ कह न सका। मुनीमजी ने सिफ़ारिश की—"नहीं, घर हो आने दो, सुबह का निकला है!"

पुराने पम्प के तले को फटफटाते रामगोपाल कलट्टरगंज की ओर चल दिया। कण्ट्रोल की दूकान अभी बन्द थी। हिन्दी-उर्दू के मोटे-मोटे अक्षरों में एक तख्ती पर लिखा था—गेहूँ १) का ४ सेर। सामने सैकड़ों की भीड़ थी। कुछ लोग दूकान से बिलकुल सटकर बैठे थे।

कुछ लोग बोरी या चादर का टुकड़ा लिये भीड़ के चारो ओर टहल कर प्रतीक्षा कर रहे थे। मैले से चदरे का टुकड़ा काँख में दबाये, भीड़ से बच कर खड़े, अपने ही जैसे, अपेक्षाकृत एक भलेमानुस को सम्बोधन कर रामगोपाल ने पूछा—"दूकान खुली नहीं अभी ?"

समीप खड़े दूसरे, आदमी ने उत्तर दिया—"अभी कहाँ ; साढ़े चार बजे हवलदार साहब आकर खुलायँगे।" भीड़ की ओर संकेत कर गाली दे उसने कहा—"सब साले भुक्खड़ कहीं के ! मार-पीट करने लगते हैं। देखो, तो ससुरे दिन चढ़े से आ बैठे हैं।"

भीड़ के किनारे बैठे एक जर्जर-पिंजर मात्र शरीर बूढ़े ने आवाज़ ऊँची कर उत्तर दिया—"बैठें नहीं तो क्या ?....कल हम दोपहर में आये और हमारे बाद आये लोग हमें ढकेल, लेकर चले गये। हमें मिला ही नहीं। पाँच-पाँच जने खाने वाले हैं। आज हमें किसी साले ने धक्का दिया तो हम ईंट मार साले का सिर फोड़ देंगे। चाहे फाँसी हो जाय ; और क्या ?"

उसका उत्तर देने दस-पाँच खड़े हो गये—"बड़े आये सिर फोड़ने वाले। देखें किसके सीने पर बाल हैं ? हम सुबह से बैठे हैं। हम सबसे पहले लेंगे।" भीड़ में दबी एक बुढ़िया ने दोनों हाथ उठाकर कहा—"अरे भैया, हम सबसे पहले आये थे। देखो धक्के देकर हमें कहाँ हटा दिया और सब लोग आगे हो गये। हमारे इत्ते-इत्ते बच्चे हैं, कल के भूखे ! हमें कोई दिला दो, हवलदार साहब हजूर के बच्चे जीते रहें !"

बावेला-सा मच गया। किसीने पुकारा—"देख लो, हवलदार साहब, अभी से ये लोग दंगा कर रहे हैं ! हम कहे देते हैं, हाँ !" दूसरी ओर से हाथ भर का डण्डा उठा चिल्लाकर हवलदार साहब ने ललकारा—"ऐसे किसी को नहीं मिलेगा। चलो सब लोग....लैनडोरी करो !"

रामगोपाल के समीप खड़े, अपेक्षाकृत भलेमानुस दिखाई देनेवाले

आदमी ने कहा—"कल लड़के को भेजा था। लौण्डा खाली हाथ चला आया। आज आधी दिहाड़ी बिगाड़ कर आये थे, सो यहाँ कुछ मिलता दिखाई नहीं देता। इससे तो भैया पौने-तीन सेर का भला; दिहाड़ी तो कर लेते हैं! अपने तो चल दिये।" उसके सुर में सुर मिला दूसरे आदमी ने समर्थन किया—"कुल पाँच बोरी तो गल्ला आता है, यहाँ पाँच सौ मुण्ड जुड़े हैं।" रामगोपाल भी लौट चला और एक गली के मोड़ पर बिना बहस किये, एक रुपये का आटा अँगौछे में बाँध घर देने गया।

बिंध्या कोठरी के दरवाज़े से गली में आँख लगाये, रोती हुई मुनिया को गोद में लिये समझा रही थी—"चाचा अभी आयँगे, बाज़ार से चून लायँगे, दाल लायँगे, गुड़ लायँगे, सकरकन्दी लायँगे।" उसकी आँखों से उद्विग्नता और बेबसी बरस रही थी। रामगोपाल के हाथ से आटे की गाँठ ले, लड़की को एक ओर छोड़, वह थाली में आटा माँड़ने लगी। रामगोपाल मुख से कुछ न बोल, दीवार के साथ पड़े चटाई के टुकड़े पर बैठ नज़र गली की ओर किये रहा।

चूल्हे से दाल की बटुई उतार बिंध्या ने एक ओर टिका दी और बुझी हुई लकड़ियों को फूँक कर प्रज्वलित किया। रोटी तवे से उतरने से पहले ही मुनिया समीप आ बैठी। कटोरी में कलछी भर दाल का पानी डाल, बिंध्या रोटी मुनिया के हाथ में दे ही रही थी। गली में लट्टू खेलना छोड़ भानू दौड़ा आया—"हम लेंगे, पहले हम लेंगे। मुनिया पहले दाल भी खा चुकी है; हाँ, हम पहले....।"

बिंध्या ने रोटी के दो टुकड़े कर लड़के-लड़की को बाँट दिया। और रामगोपाल की ओर देख बोली—"तुम भी थाली उठा लो, यह हो गई रोटी। सुबह से जल का घूँट भी गले से नहीं उतरा।"

रामगोपाल की आँखों के सामने अब भी बनिये की वह सूरत नाच रही थी—"पौने तीन सेर....तो क्या घर से दे दें भैया? जैसा

पाते हैं, बेच देते हैं—बाज़ार में है ही नहीं ! और तब स्वयम् उसके ही हाथ में हज़ारों मन की चाबी थी।········फिर कण्ट्रोल की दूकान के सामने की भीड़! सेठजी उसे पूड़ी खिलाने को तैयार थे, पर घर पर उसके बच्चे और उनकी माँ!····आग लगे ऐसी पूड़ी को····अपने बच्चों को, इतने लोगों को भूखा छोड़कर पूड़ी········। और तब नयागंज में लाल झण्डा उठाये 'मुनाफ़ाखोरी हराम है' चिल्लानेवाले उसकी आँखों के सामने फिर गये। अब उन्हें मन में गाली देकर अँगूठा दिखाने की बात उसने नहीं सोची। कनस्तर पर खड़े होकर लेक्चर देनेवाले की बात याद कर, एक गहरा निःश्वास छोड़ उसने कहा—"अरे, सुनता कौन है, सब अपने-अपने मरे जा रहे हैं। उसे ऐसा जान पड़ने लगा—जैसे अपने बच्चों की भूख की याद से पूड़ी ठुकराकर चला आया, वैसे ही वे लाल झण्डे वाले सब ग़रीब लोगों की फ़िक्र कर रहे हैं····पर सुनता कौन है ?

बिंध्या ने थाली में पतली दाल छोड़, एक गरम रोटी रख दी। लुटिया से हाथ धो, रामगोपाल गुस्सा तोड़ने को ही था कि बिंध्या ने पूछ लिया—"क्या भाव मिला चून ?"

रामगोपाल को फिर पौने-तीन सेर देने वाले बनिये की याद आ गई, जब अपने हाथ में हज़ारों मन की चाबियों का गुच्छा था। जैसे उस सबके परिणाम में ही कण्ट्रोल की दूकान के आगे की भीड़ हो। उसे जान पड़ा—यह है उसकी रोटी का मोल ?

आँखें कुछ डबडबा-सी गईं, इसलिये बिंध्या की ओर से फेर लीं। सोचता रहा, इस मोल रोटी पाते हैं, नहीं तो यह भी जाये। रोटी पा सकने के लिये ही वह अपनी रोटी से हाथ धो रहा है········घुनने के लिये अनाज खत्तियों में भर रहा है !

६

छलिया नारी

लय से गुनगुनाते रहना—"आस निरास भई...." 'और आह भर जीवन का दुख प्रकट करना' नन्दो को नहीं आता था। दुख को रोचक और प्रभावोत्पादक रूप में प्रकट करना वह नहीं जानती थी। रसोई में बैठी, घुटने पर सिर टेके या कोई दूसरा काम करते समय वह गहरी उदासी से सोचती रहती....हाय कैसे कटेगी? उसके प्रत्येक दिन का आरम्भ होता, निराशा के अंधकूप में एक और सीढ़ी उतर कर।

और पाँच मास पूर्व? उसका जीवन उत्साह से वैसे ही बुलबुला रहा था जैसे नदी की पतली, क्षीण परन्तु सजीव धारा अपने स्रोत पर बुलबुलाती है। वे बातें किसी से कहने की न थीं परन्तु हृदय में तो सब कुछ था। जब और लोगों की तरह संसार में उसने जन्म लिया है तो उन्हीं की तरह पुलक और उत्साह से भरे जीवन के मार्ग में उसके लिये स्थान क्यों न होगा? जीवन के इस मार्ग पर पाँव रखने से पहले उसके मन में उमंग क्यों न उठती? कल्पना क्यों न जागती?

नन्दो को जन्म दे देने से पहले उसके माँ-बाप ने उससे कोई राय न ली, तो जीवन के मार्ग पर उसे चला देने के लिये ही उसकी राय की क्या ज़रूरत थी? नन्दो का जीवन उसके माँ-बाप के जीवन का अंग था। उससे पूछे बिना उसे जन्म दे पाल-पोस जब उन्होंने इतना बड़ा कर दिया तो आगे भी वे सब कुछ कर सकते थे और कर ही तो रहे थे।

शरीर में फूटने वाला यौवन मन में कैसे न फूटे ? शरीर में उठते यौवन के चिह्नों को दबाया-छिपाया नहीं जा सकता। परन्तु मन में फूटती यौवन की कली को छिपाया और दबाया जा सकता है। वही नन्दो ने भी किया। गाँव की और सब लड़कियों की तरह एक छैला दूल्हा एक दिन उसे भी डोली में बिठा ससुराल ले जायगा। जहाँ वह मेंहदी रचायगी, रंगीन साड़ी पहनेगी और बहुओं के जमघट में मुँह से मुँह मिला, ऊँचे स्वर में सोहर, सावन और लचारी गायगी। कहीं उसके लिये भी ससुराल का घर है ज़रूर। उसे मालूम नहीं कहाँ ?·······उसके माँ-बाप को तो मालूम है।

बिन्दा, सत्तो, राधा, ज्वाला कितनी ही सहेलियों के दूल्हे उसने देखे थे। गाँव की बाट चलते कितने ही जवान और मेले में कितने ही शौक़ीन बाबू उसकी ओर तकने लगते। उनमें से ही कोई न सही परन्तु उन जैसा ही कोई एक छैला, एक दिन उसे लिवाने आयगा। यौवन की फूटती कली से कल्पना की सुगन्ध उठ उसके मन को मोह लेती।

फिर गाँव में उसके ब्याह की बात भी फैल गई थी। उससे किसी ने न कहा सही परन्तु सुनतो उसने भी लिया कि वह शहर में बाबू हैं। स्वयम् ही उसने समझ लिया—शहर से सुन्दर सलोने बाबू, रसिया, आराम में रहने वाले। वह ऐसा समझती क्यों न ? जीवन की सबसे बड़ी वस्तु पति की कल्पना सबसे सुन्दर क्यों न हो ? क़द्दावर, सलोना, हँसमुख और रसिया बोल में मिसरी घुली हुई। उसे इतना निश्चय और भरोसा था कि "द्वारचार" के अवसर पर उसने आँख उठाकर देखने की भी ज़रूरत नहीं समझी।·······जन्म भर देखना ही था।

पराई चिन्ता करनेवाली औरतों के मुँह से अपने पति के रूप-गुण की बात उसने जो कुछ सुनी वह उसे भायी नहीं, "ऐसे बकने

से क्या होता है"—उसने सोचा—"ऐसा कभी हो सकता है ?" जो जीवन का देवता, परमेश्वर है—वह कहीं ऐसा हो सकता है ?"

× × ×

सुहाग रात आई। विनोदसिंह की बूढ़ी बुआ बहू को कोठरी में बैठा आई। नन्दो समझ गई, जीवन का सबसे उत्कट और तीक्ष्ण क्षण आ पहुँचा। जीवन का रहस्य-मय द्वार खुलने वाला था। जीवन के देवता और परमेश्वर का साक्षात्कार होने वाला था। खाट की पटिया पर सिर टेके वह फ़र्श पर बैठी थी। उसके कान, आँखें और रोम-रोम प्रतीक्षा और आशंका से सिहर उठे। जान पड़ता था, प्रतीक्षा के वे पल जैसे कभी समाप्त न होंगे। और, कदमों की आहट एक दफ़े सुनाई दे जाने के बाद····वे पल ऐसे उड़ गये कि सम्भलने का भी अवसर न मिला।

उसी खाट पर उनके आ बैठने से वह ऐसे हिल गई जैसे भूकम्प आ गया हो। थोड़ा खाँस कर उनके वे पहले शब्द !····रोम-रोम जिन्हें सुनने के लिये सतर्क था,····अप्रत्याशित से जान पड़े। उनमें मिसरी नहीं घुली थी, बल्के जैसे कुल्हाड़ी का प्रहार हो !

उन्होंने कहा—"देखो जी, इस घर में अदब क़ायदे और पर्दे से रहना होगा ! समझीं, यह गाँव नहीं, शहर है।" सहसा नन्दो की कल्पना बदल गई। वह आशा कर रही थी—उन्माद में आँखें मूँद लेने की ! एक ठोकर ने उसकी आँखें खोल उसे स्तब्ध कर दिया।

पहली मुलाकात का असर गहरा होता है, रोब उसी दिन जमा लेना चाहिये—"बुज़ुर्गों के अनुभव की यह बात विनोदसिंह सुन चुका था। पहली रात की पहली मुलाकात में दृढ़ता से व्यवहार करने का निश्चय उसने किया था। उसके रिश्ते में, सबसे अधिक दबदबा अपनी स्त्री पर कल्याणसिंह का था। औरत ने मर्द के सामने कभी चूँ तक नहीं की थी। कारण था, यही पहली रात की सावधानी।

कल्याणसिंह चतुर आदमी थे। पहली मुलाकात में भी अपना बुलबुल साथ ले गये। बुलबुल ने शरारत से पर फड़फड़ाने शुरू किये कि एक ही थप्पड़ में उन्होंने उसे समाप्त कर दिया। चवन्नी की बुलबुल गई तो क्या? कल्याणसिंह की बहू समझ गई—कितने सख्त आदमी से पाला पड़ा है। उम्र भर उसने चूँ नहीं की।

विनोदसिंह से इतना न हो सका। पर यह समझा देना ज़रूरी था कि जोरू के ग़ुलाम बने रहने वालों में वह नहीं। मन के उद्गार को समेटे परन्तु संक्षिप्त से शरीर को फैलाकर वह पलँग पर लेट गया। मानो, पैताने रखी या बैठी चीज़ ऐसी नहीं कि उसकी कोई परवाह उसे हो। नन्दो को सबसे पहले परिचय हुआ पति के चरणों से। उसके गालों पर आँसू बह चले। विनोदसिंह ने करवट बदली। खाट के इस दफ़े हिलने से नन्दो के शरीर में रोमांच नहीं हुआ।

"अच्छा गोड़ दबाओ!"—नन्दो को सुनाई पड़ा। संकोच और भय को वह अभी बस न कर पाई थी कि डाँट सुनाई दी—"सुनती हो कि नहीं?" नन्दो के आँसू विनोदसिंह के पाँव पर टपक पड़े। बोले—"यह सब तिरिया चरित्तर यहाँ नहीं चलेंगे!.......रोने का मतलब?"

खेल छोड़ कंडे पाथने को तो माँ-बाप ने भी कई दफ़े डाँटा था, मार भी पड़ी थी पर दिल यों कभी न टूटा था। वे हड़ीले, खुरदरे पाँव, जिनसे जूते के चमड़े की दबी-दबी गंध आ रही थी, सूखे कंडों से अधिक सुखदायक स्पर्श उनका न था। नन्दो ने आँखें उठाकर शेष शरीर की ओर देखा भी नहीं। कोई कौतूहल भी उसे न हुआ। उसके आँसू विनोदसिंह के पाँव की, अबरी की सी फटी-फटी त्वचा पर टपकते रहे।

विनोदसिंह के मन में उमंग ने ज़ोर मारा। गला पिघल गया। पुचकारा—"रोओ मत, रोती क्यों हो? नन्दो की कलाई पर उसका

हाथ जा पड़ा। इन हाथों का स्पर्श पाँव के स्पर्श से अधिक सरस न था। सुख का स्वप्न समाप्त हो चुका था। आँखें मूँद और होंठ काट उसने निश्चय किया उसे सहना है।

× × ×

जीवन की उठती उमंग, जीवन की समाप्ति से मुक्ति की चाह में बदल चुकी थी। जिस काम के लिये उसे लाया गया था, सिर झुका उस उपयोग में वह आ रही थी। कल्पना के संसार और वास्तविक जीवन का अंतर एक ही बात में स्पष्ट हो गया :—वह आई नहीं थी, उसे लाया गया था। तो फिर उसकी 'इच्छा' कैसी? 'इच्छा' तो है उसे लाने वाले की।

जब दोनों हाथों में मुंह छिपा, घुटने पर सिर टेक वह सोच में डूब जाती, विनोदसिंह का हड़ैला, ठिगना शरीर, पक्का साँवला रंग, बड़ी-बड़ी मूँछें और आगे बढ़े हाथ सब लोप होकर उसे केवल दिखाई देने लगता एक गिद्ध! गाँव के बाहर खेतों में सूर्य निकलने से पहले उसने कई बार गिद्धों को निश्चेष्ट शव पर तृप्ति के लिये चोंचें चलाते देखा था। उसे जान पड़ा, जैसे उसका इच्छा रहित शरीर निश्चेष्ट शव है और विनोदसिंह एक गिद्ध।

वह मर ही जाय तो क्या?·······जब तक वह जीवित रहेगी यह यातना जीवन में बनी रहेगी·······बिना मरे उससे मुक्ति नहीं। परन्तु क्या मर जाने के लिये ही वह पैदा हुई थी····बिना कुछ पाये ही···· बिना कुछ देखे ही?

आँचल में मुँह छिपा रोने से उसे सान्त्वना मिलती थी पर जी भर रो पाने की भी स्वतंत्रता उसे न थी। बुआ दिन की नींद से चौंक या पड़ोस की ग़मी—खुशी से लौट, उसे रोता देख, बिगड़ कर गाली देने लगतीं—"यह क्या कुलच्छन दिहात से लेकर आई है? किसे रोती है? रोना है तो पैदा करने वालों को रोये·····" नन्दो

गले में भरे आंसुओं को हिचक कर पी जाती। एक दिन बुआ भी चली गईं। दो दुखों में होने वाले परिवर्तन का भी अवसर जाता रहा।

× × ×

रात में आराम और सुबह भोजन पा विनोदसिंह दफ़्तर चला जाता। इसी काम के लिये वह नन्दो को लाया था। नन्दो रात की यातना और दिन का निरादर लिये निर्विघ्न रोती और रोकर आने वाली संध्या के लिये रसोई और रात के लिये दिल कड़ा करती। वह सोचती यही जीवन है। आँसुओं की झड़ी में से बिखरी हुई कल्पना की किरणें कभी-कभी इन्द्र धनुष की भाँति झलक उठतीं। बेतुकी बातों की याद आ जाती। मेले में देखे किसी सुडौल नौजवान की गुलाबी आँखें!····गाँव के कुँये पर उसके लिये जगमोहन का प्रतीक्षा करना। एक दिन उसने कहा—नन्दो तुम्हारे लिये सहर से टिकुलिया और चूड़ी लाये हैं, लोगी। बाँयें हाथ का अँगूठा दिखा उसने उत्तर दिया था—ए है, बड़े आये लाने वाले। लाला से कह दूँगी।

राह में लौटते समय वह सोचती आई—बदमास मुड़चिरा कहीं का पीछे पड़ा है। आज वह सोचती, जगमोहन दिल से उसे कितना मानता था, चिरौरी करता था। वह अहंकार से झल्ला उठती। अब वह कुछ रह ही नहीं गई।

नन्दो सोचती, वह मर जाय! फिर सोचती, हाय इतनी छोटी-सी उम्र में वह कैसे मर जाय, क्यों मर जाय?····और चली जाय तो कहाँ?····कहीं भी!····उसे सब कुछ सह्य है।····शारीरिक पीड़ा, भूख, सब कुछ परन्तु यों निश्चेष्ट होकर नोंचा जाना नहीं।

घर के दरवाज़े पर लटकी चिक से गली का जितना भाग दिखाई देता था उससे अधिक संसार उसने देखा नहीं! जाय तो कहाँ?

परन्तु उस अनजाने भयंकर संसार में मृत्यु से अधिक भयंकर तो कुछ नहीं इस निरंतर यातना से वह भी अच्छी ! कई दफ़े उसने निश्चय किया अपने आपको कसाई के इस काठ से हटाकर संसार के भँवर में डाल दे। दिन भर अपने आपको तैयार करती परन्तु दहलीज़ पर पहुँच पाँव ठिठक जाते। वह रोने लगती। साहस आँसुओं में बह जाता। और फिर रात में यातना का शिकार बन वह साहस न कर पाने के लिये पछताने लगती।

आखिर एक दिन रात का विचार दृढ़ रखने के लिये पति के दफ़्तर चले जाने के बाद उसने होंठ दबा आँसू न बहाने का निश्चय कर लिया। रुके हुए आँसुओं की भाफ के ज़ोर से उसके कदम घर से निकल पड़े। सकपकाते कदमों से चलती वह शहर के बाहर नदी के किनारे जा पहुँची। नदी में डूब मरने के लिये नहीं। एक दफ़े जीवन का उन्मुक्त श्वास स्वतंत्रता से हृदय में भर पाने के लिये।

× × ×

नन्दो के ग़ायब हो जाने की चोट से विनोदसिंह सुन्न रह गया। नन्दो का वियोग था परन्तु उससे अधिक था स्त्री के भाग जाने का अपमान। क्रोध से उसका मस्तिस्क फट जाना चाहता था। उसके घर से भाग जाने का विचार यदि मालूम हो जाता तो स्त्री भाग जाने के कलंक के बजाय वह उसे क़त्ल करने का अपराध ही अपने सिर लेता। ऐसी पापिन, दुष्टा को वह भला प्रेम कर सकता था ?

दिन बीतते गये। नन्दो के वियोग में दिन, सप्ताह और मास बीतते जानेपर, नन्दो से मिलने वाले सुख विनोदसिंह को याद आने लगे। रसोई में जब आँखों में धुआँ भर आँसू आ जाते, उसे नन्दो की याद आ जाती। चौमासे की गरमी में जब उमस से नींद न आ पाती तब याद आता, इस समय नन्दो आहिस्ता-आहिस्ता पंखा डुलाकर उसे

सुला दे सकती थी। पाँवों और बदन में एक टीस-सी उठने लगती जिसकी औषध नन्दो के हाथो के स्पर्श में थी।

बदन पर फूली घाम को सहलाते-सहलाते, नींद की प्रतीक्षा में विनोदसिंह सोचने लगता, कुलटा का कोई लच्छन तो कभी उसमें दिखाई नहीं दिया? तो वह चली कैसे गई? क्या यहाँ अकेले घबरा गई?.......दिल उसका उदास हो गया?

किसी अप्रत्यक्ष युक्ति से नन्दो के प्रति क्रोध के बजाय करुणा और सहानुभूति की भावना उसके मन में उठने लगी। सोचने लगता, यदि एक दफ़े कहीं उसे देख पाता तो यत्न से बुला लाता और फिर कभी दुखी न होने देता। नींद न आने पर नन्दो के बिना, ऊँची मुँडेरों से घिरी छत उसे भयंकर जान पड़ने लगती। नींद में करवट बदलते समय कोई सहारा न पा नींद उचट जाती। उसका हृदय नन्दो के लिये रो उठता।

ज्यों-ज्यों समय बीतने लगा। नन्दो के विरह की तीव्रता बढ़ने लगी। उसके अभाव की निरंतर अनुभूति में नन्दो विनोदसिंह को देवी जान पड़ने लगी। वह उसका पुजारी बन दिन रात उसकी लौ लगाये रहने लगा। स्वप्न में वह देखता, नन्दो बनकी पग डंडी और नदी-तट पर बाल खोले सूनी आँखों से भटक रही है....."जोगिन भेस बनाये, तन भस्म रमाई।"

सूना घर उसे काटने लगा। संध्या समय वह महाबीर जी के मन्दिर की आरती में जा बैठता और कीर्तन समाप्त होने तक बैराग्य के गीत गाता रहता। प्रातः उठ वह नदी स्नान करने चला जाता। नदी के गँदले, बरसाती जल में स्नान करने से उसे शान्ति लाभ होती। मन की शान्ति के लिये वह प्रवाह की ओर आँखें लगाये मुख से भगवान का नाम जपता रहता परन्तु आँखों के सामने लहरों पर उसे दिखाई देता—नन्दो का जोगन भेस धरे शान्त रूप।

× × ×

उस सावन की पूनो को नदी स्नान करने वालों की भीड़ अधिक थी। भीड़ से विनोदसिंह को क्या मतलब? वह नीचे की ओर नदी किनारे अपने ध्यान में मग्न था। अचानक सुनाई पड़ा—"पकड़ो, पकड़ो, बह गई।"

सामने ही विनोदसिंह को गोते खाती एक स्त्री दिखाई दी। नित्य तैरने के अभ्यास के कारण उसने आसानी से स्त्री को जा पकड़ा। स्त्री स्वयम तैरने का यत्न कर रही थी परन्तु नदी के तेज़ बरसाती प्रवाह में बेबस थी। सिर के भीगे केशों ने मुख पर लिपट उसे अंधा बना घबरा दिया। आसरा पा वह सम्भल गई। सहारे के लिये अपना एक हाथ उसने बचानेवाले के कंधे पर रख दिया। वे किनारे की ओर मुड़ने लगे। स्त्री ने दूसरे हाथ से अपने मुख पर फैले बालों को हटाया। उसकी दृष्टि बचाने वाले के मुख पर पड़ी। दोनों की आँखें चार हुईं।

भय से एक आर्त चिल्लाहट स्त्री के मुख से निकल गई। प्राण बचाने वाले का सहारा छोड़, पूरी शक्ति से वह नदी की तेज़ धार की ओर लपक चली। विनोदसिंह बेबसी में पुकार उठा—"नन्दो!"

परन्तु नन्दो हाथ से निकल चुकी थी। गँदले तीव्र प्रवाह में उसके लहराते केशों की एक झलक दिखाई देकर समाप्त हो गई।

असफल हिंस्रक पशु की तरह लाल आँखों से बिनोदसिंह उमड़ती नदी की ओर देख रहा था। वह आत्मग्लानि से जला जा रहा था। ....अविश्वसनीय, छलियानारी! वह कभी किसी की हुई है?"

चार आने

बिन्दौर के राजा साहब को खेलों से विशेष शौक न था। दूसरे तालुक़ेदारों और बड़े-बड़े आई० सी० एस० अफसरों की देखा-देखी वे अपने सेक्रेटरी के साथ जीमखाने का टेनिस टूर्नामेण्ट देखने गये थे। खेल की पैंतरेबाजी से बड़े-बड़े अफ़सरों और रईस लोगों के चेहरे प्रसन्नता से चमकते देख, उनके मुख से निरन्तर वाह-वाह सुन, राजा साहब को भी खेल से दिलचस्पी होने लगी। सेक्रेटरी के कहने से उन्होंने इकहरे (singles) खेल के मुख्य विजयी के लिये ट्राफी (विजयपात्र) की घोषणा कर दी। खेल समाप्त होने पर दूसरे बड़े आदमियों की तरह उन्होंने भी खिलाड़ियों से हाथ मिलाया। राजा साहब को सन्तोष अनुभव हुआ, एक उचित काम किया गया।

तीसरे दिन सेक्रेटरी साहब ने राजा साहब को अंग्रेज़ी का अख़बार लाकर दिखाया। उसमें राजा साहब का चित्र था, टेनिस के इकहरे खेल के विजयी खेलाड़ी मि० इर्शाद से हाथ मिलाते हुए। समाचार पत्र के दो कालमों में, मोटे अक्षरों में, राजा साहब की क़द्रदानी और उदारता की प्रसंसा के साथ खिलाड़ी को विजयपात्र देने का समाचार पत्र था। तब से टेनिस के खेल के प्रति राजा साहब के अनुराग की सीमा न रही। टेनिस के खेल सम्बन्धी अंग्रेज़ी शब्द निरन्तर उनकी जिह्वा पर रहते हैं। टेनिस के बल्लों के (रैकेट) वज़न और गेंद बनाने वाली कम्पनियों के नाम उन्हें याद हो गये। किसी भी समाचार-पत्र में किसी भी स्थान पर टेनिस-मैच का समाचार प्रकाशित होने पर वे उसे पढ़ते या पढ़ा कर सुन लेते। सफ़र में आधा दर्जन बढ़िया टेनिस रैकेट उनके साथ रहते। मंसूरी पहुँचने पर खेलाड़ियों का धारीदार कोट अपने स्थूल, शिथिल शरीर पर कसे वे प्रत्येक सन्ध्या छः आदमियों से ढकेली जाती रिक्शा पर सवार हो, टेनिस के मैच में पहुँच जाते। वे टेनिस के संरक्षक बन गये।

इर्शाद हुसैन के लिये जीवन की सबसे मूल्यवान और प्रिय वस्तु थी टेनिस का रैकेट। ऊँची कीमत का वह रैकेट इर्शाद को कॉलेज-टूर्नामेण्ट में विजयी होने के पुरस्कार में मिला था। इस रैकेट की बदौलत सम्मानित समाज के बड़े-से-बड़े महारथियों तक उसकी पहुँच हो पाती थी। बड़े-से-बड़े आई० सी० एस० अफसर, सर और तालुक़ेदार मुस्करा कर उससे हाथ मिलाते। यूनिवर्सिटी की परीक्षाओं में कोई चमत्कार न दिखा सकने पर भी उसका आदर और महत्व था। उसके अपने घर में समृद्धि न होने पर भी, समृद्ध लोग उसे आदर की दृष्टि से देखते। जस्टिस विकसन ने उससे हाथ मिलाया तो कलक्टर साहब ने भी शेक-हैण्ड किया। राजा साहब बिन्दौर ने उसे 'कार्लटन' होटल में चाय पीने के लिये निमन्त्रित किया तो बिल्लूर के नवाब साहब ने भी उसे 'रायल' में बुलाया।

टेनिस के ज़ोर पर समाज में सम्मान पाकर भी इर्शादहुसैन के जीवन की समस्या हल न हुई। वह घर में बड़ा लड़का था। घर के बोझ को सिर लिये बिना चारा न था। इर्शाद के पिता के समय प्रश्न था, घर और ख़ान्दान की इज़्जत की रक्षा का। नवाबों के समय के जीवन-साधन नहीं रहे; परन्तु घर की इज़्जत चली आती थी। इर्शाद के पिता, मियाँ शाहनशाह हुसैन, जजी में पेशकार थे। इस नौकरी से उन्होंने घर को बहुत कुछ सँभाला। भाइयों को तालीम दी, घर का मकान कुर्क होने से बचाया। इर्शादहुसैन के चाचा घर का कर्ज़ और इज़्जत बड़े भाई के सिर ओढ़ा, एक के बाद एक अलग जा बसे। मियाँ शाहनशाह-हुसैन को इर्शाद हुसैन से बड़ी-बड़ी उम्मीदें थीं परन्तु उन उम्मीदों के पूरी होने से पहले ही अल्लाताला ने उन्हें अपने पास बुला लिया।

कहावत है—शेर भूखा मर जाता है; घास नहीं खाता। वैसे ही खान्दानी शरीफ़ इन्सान भूखा रह कर भी समाज में अपना सम्मान बनाये रखता है। मियाँ शाहनशाह हुसैन की मृत्यु के बाद घर के

भीतर सैकड़ों मुसीबतें सह कर भी इर्शाद और उनके छोटे भाइयों की तालीम जारी रही। घर की औरतों के बाहर निकलने का काम न था। कभी वे घर से निकलतीं भी तो पर्दे में। टाँगा बिलकुल ड्योढ़ी से सटा-कर खड़ा किया जाता। दूधिया सफ़ेद चादरें टाँगे के आगे-पीछे तन जातीं। बैठक में कभी मेहमानों के आने पर बेगम साहिबा चाँदी की कामदार तश्तरी में पान और खुशबूदार तम्बाकू भेजना न भूलतीं।

कुंजड़े घर की ड्योढ़ी पर आवाज़ लगाते तो भीतर से कहला दिया जाता—भई, सब्ज़ी बाजार से आ गई है। मछलीवाली को उत्तर मिलता—गोश्त ले लिया गया। कसाई आवाज़ लगाता तो उसे उत्तर मिलता—मछली ले ली गई। फेरी बेकार होने पर इन लोगों ने पुकार लगाना छोड़ दिया। पान-ढोली वाले की फेरी बन्द न हुई। उधार के लिये झंझट होती थी परन्तु घर में पान का खर्च बन्द न हुआ।

मियाँ शाहनशाहहुसैन पर वर्षों से लाला महादेवप्रसाद का तीन हज़ार का कर्ज़ था। मियाँ साल छः महीने में सूद की रक़म किसी-न-किसी तरह अदा कर ही देते थे। उम्मीद थी, लड़के के बरसिरे रोज़गार हो जाने पर कर्ज़ अदा कर देंगे और अपने पुश्तैनी मकान को नये सिरे से बनवायेंगे। मियाँ शाहनशाहहुसैन की मृत्यु के बाद सूद की रक़म मूल में मिलने लगी। चतुर लालाजी ने पिता के कर्ज़े के काग़ज इर्शादहुसैन के नाम बदलवा लिये। सूद का दर कम कर देने के लिये मकान गिरवी हो गया। लालाजी स्वर्गीय मियाँ शाहनशाहहुसेन की स्मृति का ख़्याल कर, उनके बेटे से ७००) सालाना सूद के बजाय मकान के किराये के रूप में केवल ६००) रुपया लेने लग गये।

पुश्तैनी मकान हाथ से निकल जाने का दर्द इर्शाद और उनकी वालदा दोनों को ही कम न था। लेकिन सूदख़ोर महाजन से मुक़द्दमेबाज़ी कर कचहरी जाने की बेइज़्ज़ती कैसे बर्दाश्त की जाती! मकान के हिस्से में बसने वाले क़िरायेदारों से मिलने वाले क़िराये और

महादेवप्रसाद को दिये जाने वाले किराये के अंतर से ही, किसी तरह ढँक-ओढ़ कर, शरीफ़ खानदान का गुज़ारा चलता था। ज़ाहिरा हवेली उनकी ही थी। लाला महादेवप्रसाद शरीफ इन्सान ठहरे। उन्होंने वायदा कर लिया था, पाँच-छः बरस, जब तक इर्शाद बी० ए० पास कर कहीं नौकरी नहीं कर लेते, वे इस मामले में कुछ न बोलेंगे।

बी० ए० पास कर और टेनिस के मैदान में नाम कमा लेने पर भी अच्छी नौकरी पा सकने का मसला हल न हुआ। रोज़गार के तौर पर सिवा नौकरी के दूसरी राह न थी। मि० इर्शाद की हवेली से उनकी हैसियत जाँचने वाले लोग अगर कभी कह देते—"मियाँ, फिलहाल ज़माने में नौकरी आसान नहीं और फिर नौकरी में रखा ही क्या है? वही महीने में गिनी-चुनी रुपल्ली। कोई रोज़गार ही करो!" उनकी यूनिवर्सिटी की शिक्षा और टेनिस के खिलाड़ी के नाते बड़े आदमियों से दोस्ती और सम्मान का ख्याल कर दूसरे लोग सलाह देते—"वल्लाह! क्या बनिये बक्काल का काम करोगे? तुम्हारे खान्दान ने हमेशा हुकूमत की है। बड़े-बड़े अफ़सरान, हुक्मरान, राजा-नवाबों तक तुम्हारी पहुँच है। डिप्टी कलक्टरी तुम्हारे लिये कौन बड़ी बात है।" इस सब आशावाद के बावजूद इर्शाद जानते थे, किसी भी अच्छी सरकारी नौकरी की राह में कम्पीटीशन की कसौटियाँ हैं, जहाँ उम्मीदवारों को पहले और दूसरे डिवीज़न की चलनियों में छाना जाता है। सिफ़ारिश से बहुत कुछ हो सकता है परन्तु सिफ़ारिश की ड्योढ़ी तक पहुँचना भी तो आसान नहीं! यों सेक्रेट्रियेट की पचास-साठ की नौकरी के लिये किसी की सिफ़ारिश अथवा खुशामद करें, तो उसमें अपनी हेठी।

सोच-सोच कर मि० इर्शाद ने निश्चय किया, उनके लिये नौकरी की गुञ्जाइश सरकारी महकमों में नहीं, राजा-रजवाड़ों में ही हो सकती है। जहाँ केवल परीक्षा का ही नहीं, गुण का भी मूल्य हो! बार-बार

उन्हें बिल्लूर के नवाब साहब और बिन्दौर के राजा साहब का ख़्याल आ जाता। अन्तरंग मित्रों ने समझाया भी—जब वाक़फ़ियत है तो उससे फ़ायदा न उठाने का मतलब क्या ? ऐसे लोगों के यहाँ बीसियों मैनेजर और सेक्रेटरी पड़े रहते हैं। बीसियों दूसरी रियासतों और रजवाड़ों में ऐसे लोगों की रिश्तेदारियाँ और लिहाज़ रहते हैं। उन्हें ख़्याल हो जाय तो तीन-चार सौ रुपया माहवार कौन बड़ी बात है ? लेकिन, बड़े आदमी भी इन्सान का ख़्याल उसकी हैसियत से ही करते हैं।

मि० इर्शाद को मालूम था, राजा साहब बिन्दौर मंसूरी में हैं। अखबारों के खेल समाचार के कालम में उनका नाम छपता रहता। साहस कर इर्शाद ने एक पत्र अंग्रेज़ी में टाइप कर राजा साहब को भेजा—शायद किसी काम से उन्हें मंसूरी जाना पड़े। यदि ऐसा हुआ तो वह राजा साहब के दर्शन अवश्य करेंगे। बहुत जल्द ही राजा साहब का उत्तर आया—इर्शाद साहब अवश्य मंसूरी तशरीफ लायें और राजा साहब के मेहमान बनें।

मित्रों ने इर्शाद को समझाया—जीवन में ऐसे अवसर कम आते हैं; ऐसे अवसर पर चूकना मूर्खता है। मि० इर्शाद ने कुछ कर्ज़ लिया। दो नई पतलूनें और कमीज़ें बनवायीं। टेनिस के धारीदार कोट और पतलून पर सफ़ाई और इस्त्री करायी, रैकेट पर वार्निश। एक मित्र से सूटकेस उधार लिया। लखनऊ से मंसूरी तक थर्डक्लास का किराया दर्याफ़्त किया, लगभग आठ रुपये। सफ़र थर्डक्लास में भी हो सकता था परन्तु मंसूरी में हैसियत बरक़रार रखना ज़रूरी था। अधिक से अधिक जितना भी हो सका; पूरे साठ रुपये जेब में डाल, इर्शाद घर से चल पड़े।

मंसूरी में मोटर के अड्डे, सनीव्यू में मोटर से उतर, इर्शाद सूटकेस और बिस्तर कुली के सिर पर उठवा राह पूछते, राजा साहब बिन्दौर की कोठी पर पहुँच सकते थे परन्तु राजा साहब बिन्दौर का नाम सुनते ही, कोठी पर पहुँचा देने के लिये आतुर, रिक्शा-कुलियों

ने इर्शाद को घेर लिया। औचित्य और सम्मान का ख़्याल कर इर्शाद रिक्शा पर लद कर चले और कुली उनका असबाब लेकर पीछे-पीछे।

कोठी पर राजा साहब ने तपाक से इर्शाद का स्वागत किया। उन्हें बराम्दे में कुर्सी पर बैठा उपस्थित सज्जनों से परिचय कराया। राजा साहब बिन्दौर ने इर्शाद की प्रशंसा में कहा—"नव्वाब साहब ऐसी टेनिस खेलते हैं कि इनके सामने रैकेट हाथ में लेने की मजाल लखनऊ में तो कोई क्या करेगा!"

इर्शाद साहब को ढोकर लानेवाले रिक्शा-कुली एक ओर खड़े अपनी ओर दृष्टि पड़ने की प्रतीक्षा कर रहे थे। इर्शाद के मन में निरन्तर जेब से पैसे निकाल कर देने का ध्यान था परन्तु इस बात को इतना महत्त्व देना उचित न जँचा। राजा साहब का ध्यान दूसरी ओर होने पर इर्शाद उठे। जेब से पाँच रुपये का नोट निकाल एक कारिन्दे को थमाते हुए उन्होंने कहा, इन कुलियों को पैसे दे दिये जायँ। वे देखते रहे कि नोट कुलियों के पास पहुँचा। बोझ उठाने वाले कुली ने भी आगे बढ़ कर सलाम किया। कुली माथा छूकर अब भी कह रहे थे—"राजा लोग के यहाँ से बख़शीश!" कारिन्दे ने कुछ और सुनने से इन्कार करने के स्वर में कह दिया—"बस ठीक है, जाओ बाँट लो!" उस नोट से कुछ बचकर जेब में वापिस लौटने की आशा इर्शाद को थी; परन्तु वह उसे पी गये।

इर्शाद साहब के लिये अलग कमरा ठीक हो गया। वे राजा साहब के साथ मेज़ पर खाना खाते, चाय पीते; बढ़िया से बढ़िया सिगरेटों के डिब्बे हर समय सम्मुख खुले रहते। विशेष अभ्यास न होने पर भी वे देखा-देखी सिगरेट लगा लेते। राजा साहब के साथ उनकी रिक्शा भी चलती। टेनिस कोर्ट में उन्होंने अपने हाथ दिखाये। राजा साहब अपने मित्रों से उनका परिचय कराते और नवाब साहब कहकर सम्बोधन करते।

इर्शाद साहब राजा साहब के साथ हैकमैन, सैवोय और शार्लविली की पार्टियों और नाच में जाते। प्रतिदिन सैकड़ों रुपया पार्टी, डाँस और ड्रिंक की सूरत में बहता नज़र आता। इस समृद्धि में इर्शाद के लिये तीन-चार सौ निकल आना कौन बड़ी बात थी? प्रश्न था केवल उस ओर ध्यान जाने भर का। समृद्धि के अनुपात से, जो जितना समृद्ध समझा जाता, उसका उतना ही अधिक सम्मान होता; उतने ही अधिक रुपये उसके लिये बहाये जाते। इस परिस्थिति में रुपये की कमी और ग़रीबी की चर्चा करने का साहस इर्शाद साहब के लिये सम्भव न था। किसी समय एकान्त देख वे इस सम्बन्ध में राजा साहब से बात करने का विचार करते रहे परन्तु वह समय न आया और जब कभी कुछ मिनट के लिये एकान्त मिला भी तो असमृद्ध पहचाने जाकर सम्मान खो देने के भय ने गले को जैसे अवरुद्ध-सा कर दिया।

इर्शाद ने मन को समझाया, वह भीख नहीं माँगना चाहता, वह काम और मेहनत करने के लिये तैयार है। परन्तु आँखें निरन्तर देख रही थीं—सम्मान-आदर, काम और मेहनत का नहीं; बल्कि काम और मेहनत करने की आवश्यकता न होने का ही है। रुपये का सम्मान अवश्य है परन्तु रुपया पैदा करनेवाले श्रम का निरादर ही है। एक सप्ताह तक अवसर से किसी भी प्रकार लाभ उठा सकने में अपने को असमर्थ पा, इर्शाद साहब ने राजा साहब से लखनऊ लौट जाने की इजाज़त चाही। राजा साहब ने आग्रह किया "अभी दो चार रोज़ और ठहरिये।" राजा साहब की इच्छा के अनुकूल सेक्रेटरी साहब ने सुझाया—"नव्वाब साहब ट्रेनों में भीड़ का क्या हाल है? शायद ख़्याल नहीं रहा? तीन दिन से कम नोटिस पर तो सीट रिजर्व हो ही नहीं सकती!"

सीट रिजर्व होने या न हो सकने के प्रश्न की उपेक्षा के भाव से इर्शाद साहब ने उत्तर दिया—"वह ऐसी कौन बात है?" उस उपेक्षा

की चिन्ता न कर, राजा साहब की प्रसन्नता के लिये, टेलीफोन की ओर बढ़ते हुए सेक्रेटरी साहब ने राजा साहब को सम्बोधन किया—"हुज़ूर, नव्वाब साहब के लिये किस तारीख़ के लिये सीट रिजर्व करा दी जाय ? आज पाँच है।"

इर्शाद साहब की ओर देख राजा साहब ने फर्माया, ऐसी क्या ज़ल्दी है दो रोज़ तो और ठहरिये, छः और सात को रहिये, हाँ आठ के लिये करा दो।

सेक्रेटरी साहब ने मंसूरी में रेल के दफ़्तर को फोन किया। उत्तर मिला सीटें पूरे सप्ताह के लिये रिज़र्व हो चुकी हैं। सेक्रेटरी के इस उत्तर से इर्शाद साहब को सान्त्वना हुई थी; परन्तु सेक्रेटरी साहब यों पराजय स्वीकार करने के लिये तैयार न थे। दुबारा फोन किया ज़रा ऊँचे स्वर में और बोले—"सुनिये, हम राजा साहब बिन्दौर के यहाँ से बोल रहे हैं। राजा साहब फर्माते हैं, एक सीट की ज़रूरत है, नव्वाब इर्शादहुसैन साहब के लिये, आठ तारीख़ को हावड़ा एक्सप्रेस में लखनऊ तक।"

अब की बेर उत्तर भिन्न था। मुस्करा कर सेक्रेटरी साहब ने फर्माया—हुज़ूर को सलाम बोल रहे हैं और कहते हैं, टिकिट अलग रख लिया है। आदमी भेज कर मँगा लीजिये। टिकट की कीमत भी उन्होंने बता दी, इकतालीस रुपये आठ आने।

इर्शाद साहब का चेहरा पीला पड़ जाना चाहता था। हृदय की सम्पूर्ण शक्ति और साहस से उन्होंने चेहरे के भाव को सम्भाला। उनके लिये राजा साहब की मार्फ़त सीट रिजर्व हो चुकी थी, टिकट खरीद लिया गया था। बयालीस रुपये तुरन्त जेब से न निकाल देने का अर्थ होता, अपने आपको उस सब सम्मान के लिये अनाधिकारी प्रमाणित करना जो राजा साहब के अतिथि के रूप में उनका किया जा रहा था।

इर्शाद साहब के मंसूरी से चलने के दिन राजा साहब ने दोपहर

को एक अच्छी खासी बिदाई की दावत (फ़ेयरवेल लंच) टेनिस के खिलाड़ियों को दे डाली। नये खिलाड़ियों से परिचय प्राप्त करने का राजा साहब के लिये यह अच्छा अवसर था। दोपहर की दावत के बाद तीन बजे नीचे जानेवाली मोटर से उन्हें बिदा करने के लिये सेक्रेटरी साहब रिक्शा में सनीव्यू तक आये ; पहले से फोन कर उनके लिये टैक्सी में सीट रिज़र्व की जा चुकी थी।

एक रुपया दे कर मोटर लारी में चुपचाप नीचे चले जाने के बजाय, कार की आराम देह पिछली गद्दी पर बैठ कर जाना इर्शाद को सूलों की सेज जान पड़ रहा था। जेब में शेष रह गये केवल चार रुपये इसके लिये पर्याप्त भी होंगे या नहीं ? यदि सेक्रेटरी साहब सनीव्यू तक साथ न आते तो, गले पर यह आख़िरी छुरी क्यों फिरती ? परन्तु उनके साथ न आने का अर्थ होता, इर्शाद के सम्पूर्ण सत्कार का विद्रूप में परिणत हो जाना ! राजा साहब की कोठी से चलते समय नौकरों ने एक पंक्ति में खड़े होकर सलाम किया। इस सलाम का अर्थ वह समझा न हो, सो बात नहीं ; परन्तु हृदय पर पड़ते भाले की इस चोट को वह आँखें फिरा होंठ काट सह गया।

इतनी बड़ी हैसियत के मुसाफिर से किराये का तकाज़ा करना मोटर कम्पनी के एजेण्ट के लिये उचित न था। उसने विनय से रसीद सेक्रेटरी साहब की मार्फत नव्वाब साहब के हाथ में पहुँचा दी। रसीद की ओर नज़र डाले बिना सेक्रेटरी ने उसे नव्वाब साहब के हाथ में दे दिया। नव्वाब साहब ने भी प्रकट उपेक्षा से उसे पतलून की जेब में खोंस लिया।

कार के चल पड़ने पर उस रसीद की उपेक्षा सम्भव न थी। इर्शाद ने रसीद निकाली और देखा, तीन रुपये आठ आने ! फिर ध्यान से देखा और भाग्य के सम्मुख सिर झुका एक दीर्घ निश्वास ले वह सीने पर बाँहें बाँध, सीट से पीठ टिका बैठ गया। तेज़ चाल से फ़िसलती जाती कार की आरामदेह गद्दी पर बैठ उसकी कल्पना अनुभव कर रही

थी—एक कठोर अग्नि परीक्षा में पूरा उतर कर वह सुरक्षित चला आ रहा है। राजा साहब की कोठी में बिताये दस दिन का उसके जीवन से भिन्न एक अस्तित्व था। इस जीवन का कोई आगा-पीछा न होने पर भी उसमें एक सन्तोष था। जैसे-तैसे उसने उसे निभा दिया!

और जब देहरादून स्टेशन पर पहुँच ड्राइवर ने गाड़ी का पिछला दरवाज़ा खोल सलाम किया, इर्शाद सम्भ्रम सहित उठ गाड़ी के बाहर आया। जेब में शेष रुपये-रुपये के चार नोट उसने ड्राइवर की ओर बढ़ा दिये। इर्शाद से पहले उतरनेवाले अंग्रेज़ साहब पाँच रुपये का नोट ड्राइवर को दे, धन्यवाद के सलाम की प्रतीक्षा न कर सीधे स्टेशन की ड्योढ़ी में चले गये थे। ड्राइवर ने झुक कर जो सलाम नव्वाब साहब को किया वह निश्चय ही आठ आने से अधिक मूल्य का था और जब ड्राइवर ने चारों नोट जेब में रख लिये तब उपाय ही क्या था?

कार में सफ़र करनेवाले मुसाफ़िर की आज्ञा की प्रतीक्षा किये बिना कुली इर्शाद का हल्का असबाब उठा स्टेशन से भीतर चल दिया। गाड़ी अभी प्लेटफार्म पर लगी न थी। सामान पहले दर्जे के मुसाफिरों के लिये विश्राम करने के कमरे में रख दिया गया।

अंग्रेज़ मुसाफिर भीतर गुसलखाने चला गया था। इर्शाद पंखे के नीचे आराम कुर्सी पर सिर को दोनों हाथों से थामे बैठ गया। वह परेशान था, गाड़ी में असबाब रखने के बाद कुली को कम से कम चार आने पैसे देने ही थे और इर्शाद की जेब में भाग्य से एक भी पैसा शेष नहीं। इन चार आने पैसों के अभाव में नव्वाबी के सम्पूर्ण अभिनय की इमारत ढहकर गिर जाना चाहती थी। इर्शाद ने किसी चमत्कार की आशा में सभी जेबों में हाथ डाले; परन्तु जो था नहीं, वह कहाँ से निकल आता? सहसा मस्तिष्क में एक विचार सूझा। अधमुंदी आँखों से अपने विचार की उधेड़ बुन में वह कितनी ही देर बैठा रहा। रिफ्रेशमेण्टरूम का बैरा चाय के लिये पूछने आया। उसे इर्शाद ने सिर हिला इन्कार कर

दिया। गाड़ी के प्लेटफार्म पर आते ही वह गुसलखाने में चला गया।

आधा घण्टा—पैंतालीस-पचास मिनिट, पूरा एक घण्टा गुज़र गया। कुली बार-बार झांक कर देख रहा था। गाड़ी ने सीटी दे दी, गार्ड साहब ने सीटी बजाई, हरी झण्डी दिखाई, गाड़ी चल दी। लेकिन साहब ग़ुसलखाने से निकले नहीं। साहब ग़ुसलखाने से निकले तब गाड़ी जा चुकी थी।

इर्शाद ने परेशानी के भाव में पूछा—क्या गाड़ी छूट गई? कुली और वेटिंगरूम के बैरे ने सिर झुका कर उत्तर दिया—'हुज़ूर!' इर्शाद ने टिकट चेकर बाबू के समीप जाकर शिकायत की—उसके गुसल करते समय ही गाड़ी छूट गई। उत्तर मिला—'अब आप देहली एक्सप्रेस से मुरादाबाद जाकर हावड़ा मेल पकड़ सकते हैं; लेकिन सीट उसमें रिजर्व होना मुश्किल है।' मुरादाबाद में गाड़ी की प्रतीक्षा की असुविधा को असह्य बता इर्शाद ने कहा—'अब आज नहीं वह कल सीधा लखनऊ की गाड़ी से ही जायगा और उसका फर्स्ट क्लास का टिकिट वापिस कर लिया जाय।

आज के बजाय कल सफ़र करने में टिकट चेकर बाबू को कोई एतराज न था। टिकट वापिस हो सकता था; परन्तु वह मंसूरी में खरीदा जाने के कारण देहरादून में नहीं उसके लिये लखनऊ में ट्रैफिक सुपरिंटेण्डेण्ट के दफ़्तर में टिकट भेज कर पत्र लिखा जाना ज़रूरी था।

इतने गहरे विचार से चली गई चाल उल्टी पड़ जाने से इर्शाद के पाँव तले से धरती खिसक गई। वह फिर आराम कुर्सी पर जा पड़ा। वेटिंग रूम के बाहर खड़ा कुली प्रतीक्षा कर रहा था और इर्शाद, कुली के चार आने मांग सकने के अधिकार के सम्मुख असमर्थ!

सब कुछ सह कर भी नव्वाबी की शानदार मेहराब से कुञ्जी की ईंट खिसकी जा रही थी—केवल चार आने के रूप में!

८

चूक गयी

यदि मैं आपसे पूछूँ—पागल किसे कहते हैं? आप क्या उत्तर देंगे?

आप कहेंगे—जिस शख्स का दिमाग़ ठीक न हो, जो बहकी-बहकी बातें या बेहूदा हरकतें करे, वह पागल है। जवाब ठीक है लेकिन सवाल हो सकता है, दिमाग़ की सही हालत क्या है?

इस बारे में पागल समझे जानेवाले इन्सान की राय का भी कोई मूल्य है या नहीं? किन बातों को बहकी हुई और किन हरकतों को बेहूदा समझ लिया जाय?

मेरा ख़याल है, सभी किस्मकी बातें और हरकतें हम सभी लोग किसी न किसी वक्त करते हैं। केवल समय और स्थान के लिहाज से बातें बहकी हुई और हरकतें बेहूदा हो जाती हैं। पागल वे ही सब काम और बातें करते हैं, जो हम और आप करते हैं। उन्हें केवल समय और स्थान का ध्यान नहीं रहता। उनके दिमाग़ में समझ का काँटा गलत लाइन पर बदल जाता है और उनकी ज़िन्दगी की रेलगाड़ी पूरी रफ्तार से दौड़कर समाज के विश्वास और निश्चय की मजबूत पुस्तियों से टकराकर चूर-चूर हो जाती है। हमारा समाज अपने विश्वास की दृढ़ता के अभिमान में तिरस्कार भरी करुणा की क्षणिक मुस्कराहट से कह देता है, पागल!

बिलकुल सही और सीधी लाइन चलती आदिरा की सुन्दर जीवनी के साथ भी यही हुआ। मेजर पालित के साथ मैं पागलखाना देखने गया और आदिरा को देखा। मेजर ने बिलकुल तटस्थ भाव से कहा—'इसका पागलपन यही है कि यह जो कुछ करना चाहती है, वह बिलकुल सही और सच था। लेकिन अब यह सब इसे कहना और करना नहीं चाहिये क्योंकि इसका वक्त निकल गया है। इसकी ज़िन्दगी की गाड़ी 'फुल-स्टीम-अहेड' जाना चाहती है, लेकिन उसका वक्त निकल गया है। इसलिये इसे किसी स्टेशन पर सिंगल नहीं मिल सकता। हमारे समाज के विश्वास और रीति को यह अपनी रफ्तार की शक्ति से धक्के न दे, यह किसी को कुचल न डाले, इसलिये यहाँ लाकर इसे बन्द कर दिया गया है। यहाँ यह जीवन के शेष दिनों तक अपनी ज़िन्दगी की भाप को फुफकारों में समाप्त करती रहेगी और समाप्त हो जायगी।

मेरा विश्वास है मनुष्य प्रकृति की अपेक्षा अधिक दूरदर्शी है। वह अपनी कला की सृष्टि, चाहे वह प्रकृति की नक़ल भर ही क्यों न हो, सङ्गमरमर, पीतल, अष्टधात या मजबूत कैनवस पर करता है जो स्वयम् इन्सानी ज़िन्दगी की अपेक्षा कहीं चिरस्थायी होती है। प्रकृति अपने सौन्दर्य और कला का प्रदर्शन करती है, कल्पना सी नाज़ुक फूलों की पंखुड़ियों में और रक्तमांस जैसे क्षणभंगुर पदार्थों में। उन्हें देखकर या उनके ख़याल से मनुष्य एक समय अवाक रह जाता है, सक्ते में आ जाता है परन्तु उनका अस्तित्व क्या है? वे कितनी देर टिक पाते हैं? एक इन्सान की छोटी सी ज़िन्दगी में ऐसे कितने ही कमाल आते और चले जाते हैं।

आदिरा को मैंने देखा, उसके सिर पर उजली चाँदी लहरें ले रही थी। ध्यान से देखने पर झुर्रियों से भरे उसके चेहरे पर एक असाधारण सौन्दर्य का ढाँचा विद्यमान था। उसकी निगाहें खोई-सी

थीं। लेकिन, उन निगाहों का घर, वे आँखें, वे क्या न रही होंगी ?

एक बीते हुए सौन्दर्य की रेखायें मौजूद थीं पर सौन्दर्य,—अदूर-दर्शी प्रकृति का वह चमत्कार उड़ चुका था। रह गया था केवल संकेत-मात्र जो कल्पना की सीमा रहित कर अपनी उड़ान भरने के लिये उत्तेजित कर चुप रह जाता था। शायद ऐसे ही सौन्दर्य की कल्पना कर कवि बिहारी ने कहा होगा—'भये न केते जगत के चतुर चितेरे कूर........!' यानी उस दिव्य सौन्दर्य की छवि उतारने के यत्न में संसार के कितने चतुर चित्रकार और कलाकार दृष्टि नहीं डाल गये !

परन्तु उस सौन्दर्य के प्रति श्रद्धा से माथा नवा देने से पहले ही आदिरा का बुढ़ापे का शृङ्गार; माथे की बिन्दी, कानों के कर्णफूल, गले का हार और सबसे अधिक उसकी भूली भटकीं निगाहें, मनमें एक आशङ्का जना देतीं, एक वितृष्णा पैदा कर देतीं; ठीक वैसे ही जैसे एक सुन्दर चमकीले साँप की चपलता देख मन सिहिर उठता है।

'मेरे इस सौन्दर्य का कोई प्रयोजन है क्यों नहीं ? है। आओ ! आओ न ! आओ !'' दोनों बाहें फैलाये, सिनेमा की सफल नायिका की अदा से आदिरा ने कहा और आकाश की ओर दृष्टि उठाये वह एक ओर को चल दी। उसकी वह आयु और उसका वह द्रवित स्वर ! देख और सुनकर शरीर के रोंगटे खड़े हो गये। कहा जा सकता था, वह किसी नाटक के अभिनय का रिहर्सल कर रही है या यही उसका पागलपन था।

'यहाँ भीतर देखो !' मेजर पालितने आदिरा की कोठरी के भीतर मेरा ध्यान दिलाया। दिवार पर एक अधूरा तैलचित्र लटका था। चित्रों का मुझे शौक है। काफी चित्र मैंने देखे हैं। यूरोप में ऐसे चित्र भी देखे हैं जिन्हें संसार की कला का प्रतिनिधि कहा जाता है। रोजेटी और राफेल के बनाये चित्र देखे हैं, बोग़न के देखे हैं। भारतीय चित्र-

कला तो अपने घर और अभिमान की चीज़ है ही। परन्तु उस अधूरे चित्र को बहुत देर तक देखता रह गया।

'यह इसीका चित्र है।' मेजर पालित ने कहा। चित्र की ओर से निगाह हटाये बिना आदिरा के चेहरे की लाइनों और अनुपात याद करने लगा। दोनों में समानता थी। वैसी ही जैसे ताजमहल बनाने से पहले उसका नक्शा तैयार कर लिया जाय और बाद में ताजमहल से उस नक्शे का मिलान किया जाय। आदिरा सिर्फ एक धुंदला नक्शा भर थी और वह चित्र ताजमहल की अपनी सम्पूर्ण गरिमा लिये हुए।

उस चित्र की ओर से मैं निगाह हटा न सका और मेजर पालित कहते गये 'यह आदिरा बम्बई के एक बहुत प्रतिष्ठित और सम्पन्न परिवार की लड़की है। कम उम्र में ही विधवा हो गई थी। माता-पिता नये और उदार विचारों के लोग थे। उन्होंने इसे अपने जीवन को नये सिरे से ढालने की पूरी स्वतन्त्रता दी। और इसमें बचपन से प्रतिभा थी और प्रतिभा के साथ दृढ़ता भी। इसने पढ़ने-लिखने में मन लगाया परन्तु वह लिखना-पढ़ना केवल आन्तरिक उन्नति के प्रयोजन से था।

कहना पड़ेगा, बद-किस्मती से इसका परिचय एक बहुत नामी और सफल कलाकार से हो गया। कलाकार का नाम नहीं बता सकता। हम डाक्टर लोग गर्व से सिर ऊँचा किये रहनेवाले कितने ही खान्दानों के कच्चे चिट्ठे जानते हैं। कितनी बर्बाद मासूम जिन्दगियों की आहों के राज हमारे दिल में छिपे रहते हैं। उन्हें जुबान पर लाना पेशे के इख़लाक के ख़िलाफ है। उस चित्रकार की कई चीजें तुमने देखी होंगी, तारीफ की होगी, कुछ समय से जिक्र नहीं सुना होगा और अब शायद सुनोगे भी नहीं।

'उस नामी चित्रकार से इस स्त्री का परिचय हो गया। ज्यों-ज्यों

परिचय बढ़ता गया, इसकी श्रद्धा कलाकार पर बढ़ती गई। चित्रकार के मनमें आदिरा के प्रति अनुराग उत्पन्न हुआ। उस अनुराग को केवल भावनामय आत्मिक प्रेम समझ, संतोष पाने की आशा में आदिरा बढ़ती गई। चित्रकार की भावना क्रियात्मक रूप में आने लगी। आदिरा को यह मंजूर न था परन्तु हृदय में चित्रकार के प्रति प्रेम और श्रद्धा भी थी।

दोनों में एक संघर्ष आरम्भ हुआ। कलाकार की ओर से पाने का और आदिरा की ओर से बचने का। चित्रकार आदिरा को सशरीर चाहता था और आदिरा केवल भावना के फूल उसके चरणों में अर्पण करती। दोनों में बहस होती। दोनों की अपनी-अपनी दलीलें थीं। कई मास बीत गये।

अतृप्ति की आंच से तपकर कलाकार निरुत्साह रहने लगा, शिथिल होने लगा। उसकी सम्पूर्ण प्रतिभा आदिरा को जीत लेने में ख़र्च होकर व्यर्थ होने लगी। आदिरा दृढ़ रही, क्योंकि यह उसका अपना विश्वास और निष्ठा थी।

चित्रकार का काम बन्द हो गया। अब वह केवल आदिरा का चित्र बनाना चाहता था। आदिरा से उसका मिलना कम होने लगा। शब्दों से निराश हो उसने आदिरा को रेखाओं से बांधने का यत्न आरम्भ किया। अपने आपको भूल जाने के लिये वह दिन-रात आदिरा के चित्र में लगा रहता।

आदिरा के चेहरे का यह चित्र बना कलाकार ने उसे यह चित्र दिखाने के लिये अपने मकान पर बुलाया। चित्र का तैयार भाग आदिरा को दिखा चित्रकार ने काँपते हुए स्वर में कहा—"मैं चाहता हूँ तुम्हारे सम्पूर्ण शरीर का जैसे का तैसा एक चित्र तैयार करना। स्वयम् वञ्चित रहकर भी प्रकृति के इस अनूठे बरदान की एक यथातथ्य स्मृति छोड़ जाना चाहता हूँ।"

लज्जा और अपमान से आदिरा का चेहरा लाल हो गया। स्वेद कणों से सिक्त शरीर पर रोम खड़े हो गये। नेत्र झुकाकर उसने उत्तर दिया—'यह कला की साधना नहीं, बासना का प्रपञ्च है।'

परास्त कलाकार खीझ उठा। आदिरा की आँखों में आँखें गड़ा उसने प्रश्न से उत्तर दिया—'तो फिर तुम्हारे इस निष्प्रयोजन सौन्दर्य के अस्तित्व का ही क्या उपयोग है?' वह कलाकार मार खाये हुए की भाँति आत्मग्लानि और लज्जा से अपना घर छोड़ कहीं चला गया और फिर लौटा नहीं। अपने घर लौट आदिरा कलाकार और उसकी अन्तिम प्रतारणा की बात—तो फिर तुम्हारे इस निष्प्रयोजन सौन्दर्य के अस्तित्व का ही क्या उपयोग है? सोचती रही।

उसे आशा थी, सुबुद्धि होने पर कलाकार लौट आयगा। पर वह लौटा नहीं। आदिरा स्वयम् विक्षिप्त रहने लगी और एक दिन चित्रकार के मकान पर जा, उसके हाथों आरम्भ की गई अपनी वह तसवीर उठा लाई। इस तसवीर के सामने वह घण्टों बैठी रहती और स्वयम् ही बड़बड़ाने लगती—"तुम्हारे इस निष्प्रयोजन सौन्दर्य के अस्तित्व का ही क्या उपयोग है?"

वह सोचती रही—'यद्यपि कलाकार की कला उसकी वासना का ही रूप था परन्तु वह अपराध क्योंकर था? और कलाकार की वासना स्वयम् उसके अपने जीवन की पुकार और मेरे अस्तित्व की स्वीकृति ही तो थी, मेरे लिये गर्व की वस्तु ही तो थी?'

समय बीतने लगा। समय की बहती हुई धारा अदृश्य रूप से आदिरा के लावण्य के कण बहाये लिये जा रही थी। आदिरा सचेत होने लगी। उपयोग में आ सकने की अपनी शक्ति के प्रति और उसके लिये बीते जाते अवसर के प्रति। वह अधीर होने लगी, क्या कलाकार अब लौटेगा नहीं?

'जैसे ढलवान में आकर नदी का वेग बढ़ जाता है; वह किनारों

की काट अधिक तेजी से करती है, वैसे ही ढलती आयु शरीर को तीव्रता से क्षीण करने लगती है। आदिरा अधीरता से अनुभव करने लगी लावण्य का पुंज क्षीण हुआ जा रहा है....निष्प्रयोजन, किसी भी उपयोग में आये बिना।

कलाकार की प्रतीक्षा खोजमें बदलने लगी। आदिरा उसे ढूंढने के लिये बदहवासी में घर से निकल पड़ी। उसकी यह बदहवासी सम्पन्न और सम्भ्रान्त परिवार के लिये बवाल बनने लगी। उस पर बन्धन लगाने की आवश्यकता हुई। बन्धन ने उसकी बदहवासी को भड़का दिया। अब एक बरस से वह यहाँ है। वह चाहती क्या थी? उसके निष्प्रयोजन बीतते सौन्दर्य का अस्तित्व उपयोग में आये, इसमें ग़लती क्या है? केवल समय और परिस्थिति निकल गई है........वह चूक गई।'

मेजर पालित चुप हो गये। चित्र की ओर से दृष्टि हटा मैंने शोक प्रकट किया—'काश यह चित्र पूरा बन सकता। इसका पूरा न हो सकना मानव कला की संस्कृति के लिये कभी पूरी न हो सकने वाली हानि रह जायगी।'

मेजर पालित अब भी तटस्थ थे। उन्होंने कहा—'और क्या यह नष्ट हो रहा जीवन फिर लौट आयगा!'

सोचने लगा—'एक मानव का जीवन....कला की एक उत्कृष्ट कृति की अपूर्णता? कौन अपूर्णता अधिक चिन्तनीय है? जीवन की पूर्णता में कला है, कला से जीवन की पूर्णता है?—खैर जो भी हो, आदिरा चूक गयी!'

९

आदमी का बच्चा

दोपहर तक डोली कन्वेण्ट (अंग्रेजी स्कूल) में रहती है। इसके बाद उसका समय प्रायः आया 'बिन्दी' के साथ कटता है। मामा दोपहर में लञ्च के लिये साहब की प्रतीक्षा करती हैं। साहब जल्दी में रहते हैं। ठीक एक बजकर तीन मिनट पर आये, गुसलखाने में हाथ-मुँह धोया इतने में मेज पर खाना आ जाता है। आधे घण्टे में खाना समाप्त कर सिगार सुलगा साहब कार में मिल लौट जाते हैं। लञ्च के समय डोली खाने के कमरे में नहीं आती, अलग खाती है।

संध्या साढ़े चार बजे साहब मिल से लौटते हैं तो बेफिक्र रहते हैं। उस समय वे डोली को अवश्य याद करते हैं। पाँच-सात मिनट उससे बात करते हैं और फिर मामा से बातचीत करते हुए देर तक चाय पर बैठे रहते हैं। मामा दोपहर या तीसरे पहर कहीं बाहर जाती हैं तो ठीक चार बजे लौटकर कार साहब के लिये मिल भेज, डोली को बुला साहब के मुआयने के लिये तैयार कर लेती हैं, हाथ-मुँह धुलवा कर डोली की सुनहलापन लिये काली, कत्थई अलकों में वे अपने सामने कङ्घी कराती हैं। स्कूल की वर्दी की काली-सफ़ेद फ्राक उतार कर दोपहर में जो मामूली फ्राक पहना दी जाती है उसे बदल नई बढ़िया फ्राक उसे पहनायी जाती है। बालों में रिबन बँध जाता है। सैण्डल के पालिश तक पर मामा की नजर जाती है।

बग्गा साहब मिल में चीफ इञ्जीनियर हैं। विलायत पास हैं। बारह सौ रुपया महीना पाते हैं। जीवन से सन्तुष्ट हैं परन्तु अपने उत्तरदायित्व से भी बेपरवाह नहीं। बस एक ही लड़की है डौली। डौली पाँचवें वर्ष में है। उसके बाद से कोई सन्तान नहीं हुई। एक ही सन्तान के प्रति अपना कर्तव्य पूरा कर सकने से साहब और मामा को पर्याप्त सन्तोष है। बग्गा साहब की नजरों में सन्तान के प्रति उत्तरदायित्व का आदर्श ऊँचा है। डौली को ही बेटी या बेटा सब कुछ समझ कर सन्तोष किये हैं। यूनिवर्सिटी की शिक्षा तो वह पायेगी ही इसके बाद शिक्षा क्रम पूरा करने के लिये उसका विलायत जाना भी आवश्यक और निश्चित है सन्तान के प्रति शिक्षा के उत्तरदायित्व का यह आदर्श कितनी सन्तानों के प्रति पूरा किया जा सकता है? साहब कहते हैं—"यों कीड़े-मकोड़े की तरह पैदा करके क्या फायदा?" मामा—मिसेज बग्गा—भी हामी भरती हैं—"और क्या?"

"डौली, डौली" मामा तीन दफा पुकार चुकी थीं। चौथी दफा उन्होंने आया को पुकारा। कोई उत्तर न पा वे खिसियाकर स्वयं बरामदे में निकल आईं। अभी उन्हें स्वयं भी कपड़े बदलने थे। देखा—बँगले के पिछवाड़े से जहाँ धोबी और माली के क्वाटर हैं, आया डौली को पकड़े लिये आ रही है। मामा ने देखा और धक्क से रह गईं। वे समझ गईं डौली अवश्य माली के घर गई होगी। दो-तीन दिन पहले मालिन के बच्चा हुआ था। उसे गोद में लेने के लिये डौली कितनी ही बार ज़िद कर चुकी थी। माली की उस कोठरी में डौली के जाने से मामा भयभीत थीं। धोबी के लड़के को पिछले ही सप्ताह खसरा निकला था।

लड़की वहाँ जाती तो उन बेहूदे बच्चों के साथ शहतूत के पेड़ के नीचे धूल में से उठा-उठाकर शहतूत खाती। उन्हें भय था, उन बच्चों के साथ डौली की आदतें बिगड़ जाने का। आया इन सब अपराधों

का उत्तरदायित्व अपने ऊपर अनुभव कर भयभीत थी। मेम साहब के सम्मुख उनकी बेटी की उच्छृङ्खलता से अपनी बेबसी दिखलाने के लिये, डौली से एक कदम आगे, उसकी बाँह थामे यों लिये आ रही थी, जैसे स्वच्छन्दता से पत्ती चरने के लिये आतुर बकरी को कान से जबरन पकड़ घर की ओर लिवाया जाता है।

मामा के कुछ कह सकने से पहले ही आया ने ऊँचे स्वर में सफ़ाई देना शुरू किया—"हम जरा सेंडल पर पालिस करके तई भीतर गयेन। हमसे बोलीं कि हम गुसलखाने जायँगे। इतने में हम बाहर निकल के देखें तो माली के घर पहुँची हैं। हमका तो कुछ गिनती नहीं। हम समझायें तो उल्टे हमको मारती हैं।"

इस पेशबन्दी के बावजूद आया को डाँट पड़ी। "दिस इज वेरी सिली।"—मामा ने डौली को अंग्रेजी में फटकारा। अंग्रेजी के सभी शब्दों का अर्थ न समझ कर भी डौली अपना अपराध और उसके प्रति मामा की उद्विग्नता समझ गई।

तुरन्त साबुन से हाथ-मुँह धुलाकर डौली के कपड़े बदले गये। चार बजकर बीस मिनट हो चुके थे इसलिये आया जल्दी-जल्दी डौली को मोजे और सैण्डल पहना रही थी और मामा स्वयं उसके सिर में कंघी कर उसकी लटों के पेंचों को फीते से बाँध रही थीं। स्नेह से बेटी की अलकों को सहलाते हुए उन्हें अचानक गर्दन पर कुछ दिखाई दिया—जूँ! वज्रपात हो गया। निश्चय ही जूँ माली और धोबी के बच्चों की सङ्गत का परिणाम थी। आया पर एक और डाँट पड़ी और नोटिस दे दी गई कि यदि फिर कभी डौली आवारा-गन्दे बच्चों के साथ खेलती पाई गई तो वह बर्खास्त कर दी जायगी।

बेटी की यह दुर्दशा देख माँ का हृदय पिघल उठा। अंग्रेजी छोड़ वे द्रवित स्वर में अपनी ही बोली में बेटी को दुलार से समझाने लगीं—"डौली तो हमारी प्यारी बेटी है, बड़ी ही सुन्दर, बड़ी ही

'लाड़ली' बेटी। हम इसको सुन्दर-सुन्दर कपड़े पहनाते हैं। डौली तू तो अंग्रेजों के बच्चों के साथ स्कूल जाती है न गाड़ी में बैठकर! ऐसे गन्दे बच्चों के साथ नहीं न खेलते न।''

मचल कर फर्श पर पाँव पटक डौली ने कहा—''मामा, हमको माली का बच्चा ले दो। हम उसे प्यार करेंगे।''

''छी···छी····'' मामा ने कहा—''वह तो कितना गन्दा बच्चा है!'' ऐसे गन्दे बच्चों के साथ खेलने से छी-छी वाले हो जाते हैं। इनके साथ खेलने से जुएँ पड़ जाती हैं। वे कितने गन्दे हैं, काले-काले! हमारी डौली कहीं काली है? आया, डौली को खेलने के लिये मैनेजर साहब के यहाँ ले जाया करो। वहाँ यह रमण और ज्योति के साथ खेल आया करेगी। इसे शाम को कम्पनीबाग ले जाना।''

डौली ने माँ के गले में बाँहें डाल विश्वास दिलाया कि अब वह कभी गन्दे और छोटे लोगों के बच्चों के साथ नहीं खेलेगी। उस दिन चाय पीते-पीते बग्गा साहब और मिसेज बग्गा में चर्चा होती रही कि बच्चे न जाने क्यों छोटे बच्चों से खेलना पसन्द करते हैं। ''·····एक बच्चे को ही ठीक से पाल सकना मुश्किल है। जाने लोग कैसे इतने बच्चों को पालते हैं! देखो तो माली को, कमबख्त के तीन बच्चे पहले हैं, एक और हो गया।''

× × ×

बग्गा साहब के यहाँ एक कुतिया विचित्र नस्ल की थी। कागजी बादाम का-सा रङ्ग, गर्दन और पूँछ पर रेशम के से मुलायम और लम्बे बाल, सीना चौड़ा। बाँह की कोहनियाँ बाहर को निकली हुई। पेट बिलकुल पीठ से सटा हुआ। मुँह जैसे किसी चोट से पीछे को बैठ गया हो। आँखें गोल-गोल जैसे ऊपर से रख दी गई हों। नये

आने वालों की दृष्टि उसकी ओर आकर्षित हुए बिना न रहती। यही कुतिया की उपयोगिता और विशेषता थी। ढाई सौ रुपया इसी शौक का मूल्य था।

कुतिया ने पिल्ले दिये। डौली के लिये यह महान उत्सव था। वह कुतिया के पिल्लों के पास से हटना ही न चाहती थी। उन चूहे जैसे मुँदी हुई आँखों के पिल्लों को छू उसका रोम-रोम हर्ष से सिहर उठता। इन पिल्लों को माँगने वालों की कमी न थी। परन्तु किसे दें, और किसे इनकार करें? यदि इस नस्ल को यों बाँटने लगें तो फिर उसकी कद्र ही क्या रह जाय? कुतिया का मोल ढाई सौ रुपया उसके दूध के लिये तो होता नहीं।

साहब का कायदा था, कुतिया पिल्ले देती तो उन्हें मेहतर से कह गरम पानी में गोता दे मरवा देते। इस दफा भी वे यही करना चाहते थे परन्तु डौली के कारण परेशानी थी। आखिर उसके स्कूल गये रहने पर बैरे ने मेहतर से काम करवा डाला।

स्कूल से लौट डौली ने पिल्लों की खोज शुरू की। आयाने कहा—"पिल्ले मैनेजर साहब के यहाँ रमण को दिखाने के लिये भेजे हैं, शाम को आ जायँगे।" मामा ने कहा—"बेबी, पिल्ले सो रहे हैं। जब उठेंगे तो तुम उनसे खेल लेना।" डौली पिल्लों को खोजती ही फिरी। आखिर मेहतर से उसे मालूम हो गया कि वे गरम पानी में डुबोकर मार डाले गये।

डौली रो-रोकर बेहाल हो रही थी। आया उसे पुचकारने के लिये गाड़ी में कम्पनी बाग ले गई। डौली बार-बार पूछ रही थी, 'आया, पिल्लों को गरम पानी में डुबोकर क्यों मार दिया? आयाने समझाया—डैनी (कुतिया) इतने बच्चों को दूध कैसे पिलाती? वे भूख से चेऊँ-चेऊँ कर रहे थे, इसलिये उन्हें मरवा दिया। दो दिन तक डैनी के

पिल्लों का मातम डैनी और डौली ने मनाया फिर और लोगों की तरह वे भी उन्हें भूल गईं।

माली के नये—बच्चे के रोने की 'कें-कें' आवाज आधी रात में, दोपहर में, सुबह-शाम किसी भी समय आने लगती। मिसेज बग्गा को यह बहुत बुरा लगता। झल्लाकर वे कह बैठतीं—"जाने इस बच्चे के गले का छेद कितना बड़ा है।"

बच्चे की कें-कें उन्हें और भी बुरी लगती जब डौली पूछने लगती—"मामा माली का बच्चा क्यों रो रहा है?"

बिन्दी समीप ही बैठी थी। बोल उठी—"रोयेगा नहीं तो क्या, माँ के दूध ही नहीं उतरता।" मामा और बिन्दी को ध्यान नहीं था कि डौली उनकी बात सुन रही है। डौली बोल उठी—"मामा, तो माली के बच्चे को मेहतर से गरम पानी में डुबवा दो। फिर नहीं रोयेगा।"

बिन्दी ने हँसकर धोती का आँचल होठों पर रख लिया। मामा चौंक उठीं। डौली अपनी भोली सरल आँखों में समर्थन की आशा लिये उनकी ओर देख रही थी। "दिस इज वेरी सिली डौली···कभी आदमी के बच्चे के लिये ऐसा कहा जाता है!"—मामा ने गम्भीरता से समझाया। परिस्थिति देख आया डौली को बाहर घुमाने ले गई।

तीसरे दिन संध्या समय डौली मैनेजर साहब के यहाँ रमण और ज्योति के साथ खेलकर लौट रही थी। बँगले के दरवाजे पर माली अपने नये बच्चे को कोरे कपड़े में लपेटे, दोनों हाथों पर लिये, बाहर जाता दिखाई दिया। उसके पीछे मालिन रोती चली आ रही थी।

आयाने डौली का हाथ थाम एक ओर कर लिया। डौली ने पूछा—"यह क्या है आया?"

"माली का छोटा बच्चा मर गया"—धीमे से आयाने उत्तर दिया और डौली को बाँह से थाम बँगले के भीतर ले चली।

डौली ने अपनी भोली, नीली आँखें आया के मुख पर गड़ाकर पूछा—"आया, माली के बच्चे को गरम पानी में डुबो दिया ?"

"छित डौली ! ऐसी बातें नहीं कहते ?"—आयाने धमकाया—"आदमी के बच्चे को ऐसे थोड़े मारते हैं !"

डौली का विस्मय शान्त न हुआ। दूर जाते माली की ओर देखने के लिये घूमकर उसने फिर पूछा—"तो आदमी का बच्चा कैसे मरता है ?"

लड़की का ध्यान उस ओर से हटाने के लिये उसे बँगले के भीतर खींचते हुए आया ने उत्तर दिया—"वह मर गया—भूख से मर गया। चलो मामा बुला रही हैं।"

डौली चुप न हुई। उसने फिर पूछा—"आया, हम भी भूख से मर जायेंगे ?"

"चुप रहो डौली"—आया झुँझला उठी—"ऐसी बात करोगी तो मामा से कह देंगे।"

परन्तु लड़की के चेहरे की सरलता से उसका माँ का हृदय पिघल उठा। उसकी घुँघराली लटों को हाथ से सहलाते हुए आया कहने लगी—"बैरी की आँख में राई, नोन, हाय मेरी मिस साहब, तुम ऐसी आदमी थोड़े ही हो।····भूख से मरते हैं कमीने आदमियों के बच्चे।" कहते-कहते उसका गला रुँध गया। उसे अपना लल्लू याद आ गया····दो बरस पहले····तभी से तो वह साहब के यहाँ नौकरी कर रही थी।

१०

पुलिस की दफ़ा

पंजाब के स्कूलों में गरमी की छुट्टियाँ बरसात में जुलाई अगस्त में होती हैं। गाँव पहुँचने से पहले ही सब ओर गहरी हरियाली छायी रहती है। स्टेशन से कसबा तक कच्ची-पक्की सड़क की दोनों ओर धान और मक्का खेतों में घुटनों तक बढ़ आते हैं। सड़क किनारे गढ़ों में गँदला जल ताल-तलैया के रूपमें भर जाता है।

बन्देगढ़ कॉंगड़े के पहाड़ों की तराई में एक बहुत छोटा-सा कसबा है। आस-पास के पहाड़ी गाँवों से लोग मक्का और धान बेच गुड़, नमक, तेल, तम्बाकू और बस्त्रादि खरीद ले जाते हैं। दो-तीन दुकाने बजाजों की हैं, दो-चार सुनारों की। राधे पंसारी जनरल मर्चेण्ट और हकीम भी है। अजवायन, ज़ीरा, लालटैन और किसानों के औजारों के लिये कच्चा लोहा तक बेचता है। कसबे में डाकखाना, थाना और प्राइमरी स्कूल भी हैं।

गांव भरमें मैं ही अकेला व्यक्ति हूँ जिसने होशियारपुर और जालन्धर जाकर बी० ए० की डिगरी हासिल की है और अब फगवाड़े के हाई स्कूलमें मास्टर हूँ।

मानसिक रूप से मैं कूपमण्डूक नहीं। जानता हूँ, यह संसार विशाल और विस्तृत है—रोचक और रहस्यमय है। स्कूलमें लड़कों को भूगोल पढ़ाता हूँ। गरमियों के दो मास के अवकाश में स्वीडन जाकर मध्यरात्रि के सूर्य के दर्शन नहीं कर सकता, वीनस की गलियों में गंडोला की सैर भी नहीं कर सकता, परन्तु इस विस्तृत और विचित्र देश में भी बहुत कुछ है:—कराची, बम्बई, मद्रास और पुरी में समुद्र-तट हैं। उससे भी समीप पेशावर में खैबर का ऐतिहासिक दर्रा है और स्वर्ग की उपमा पानेवाला काश्मीर भी। मैं अभी तक सैकड़ों राजवंशों को निगल जाने वाली अपने देश की राजधानी दिल्ली भी नहीं देख पाया।

तीन वर्षसे छुट्टियों के अन्त में, जब अपने सीमित संकुचित कसबे से उकता जाता हूँ, आने वाली छुट्टियों में काश्मीर जाकर शिकारे पर निशात, शालीमार और मार्तण्ड की सैर करने का निश्चय करता हूँ। पहलगाँव, गुलमर्ग, कुक्कड़नाग, बैरीनाग सब मुझे याद हैं। परन्तु छुट्टियों के एक सप्ताह पूर्वसे ही बन्देगढ़ का आकर्षण प्रबल हो जाता है। विचार बदल जाते हैं। रक्खा हलवाई की धुएँ से काली ततैयों और बरैयों से छाई दूकान गुलमर्ग के फूलोंसे भरी उपत्यकाओं और अधित्यकाओं से कहीं अधिक चित्रमय और मोहक बन जाती है। उसकी दूकान के गुड़ के सेव और तेल के पकौड़े काश्मीर के बागों की चेरी, बग्गूगोशे और सेवों से अधिक आकर्षक बन जाते हैं। राधे पनसारी का चूर्ण डा० साह के कार्मिनेटिव मिक्सचर से अधिक विश्वास योग जान पड़ने लगता है। मुरली सुनार अपने चांदी के चश्मे को सूत से ४५° अक्षांस पर साधे, मेरी प्रतीक्षा में धमकाता जान पड़ता है; हाँ, अब तो बम्बई और विलायत जाओगे, टाट गन्दा करने को हमारी ही दूकान रह गयी थी ? काहनसिंह अपने पके गलमुच्छे सँवार कर कहेगा, अब नहीं कहानी सुनोगे, क्यों ? उसकी रहस्यमय कहानियाँ याद आने लगती हैं। फिर दादी....इस वर्ष जिन्दा हैं, अगले वर्ष का क्या ठिकाना ? यह तो सृष्टि का क्रम है। बुजुर्गों की छत्रछाया सिर पर बनी रहे। पत्नी और एक वर्ष के बच्चे की याद की बात कहना ढीठपना है। सब लोग जानते हैं, वे भी हैं, पर मेरा व्यवहार ऐसा है, मानो वे हैं ही नहीं।

गाँव में मेरी एक स्थिति है और आदर भी है। वहाँ कोई मेरी उपेक्षा नहीं करता। जाते ही सब लोग आन्तरिकता और चिन्ता से स्वास्थ्य का हाल और दूसरी बातें पूछते हैं, मानों वर्ष भर मेरे विछोह में वे कलपते रहे हैं। वर्ष भर स्कूलों में लड़कों की सन्दिग्ध और शिकायत भरी, हेडमास्टरों की हुकूमत भरी और दूसरे सहयोगी मास्टरों की प्रतिद्वन्दिता भरी दृष्टियों से मन इतना विषण्ण

हो जाता है कि अपनी प्रतिज्ञा में बिछी बन्देगढ की आँखों में जा, विश्राम पाये विना जीवन सम्भव नहीं जान पड़ता । फिर वही सब बातें, जिनसे छुट्टियाँ समाप्त होने के पहले उकता जाता हूँ । मकान के निचले बरामदे में मोढ़े पर बैठे-बैठे पुरानी पाठ्य पुस्तकों को पढ़ते रहना, कलमसिंह की खपरेल की छाजन पर से पीपल के पत्तों को हिलते देखते रहना और उससे बहुत दूर ज्वालामुखी की पहाड़ियों की अस्पष्ट सी रेखा । गली में बरसात का कीचड़, फजल और महम्दे की चीनी बत्तखों के झुंड का एक के पीछे गली के पूर्व से पश्चिम और पश्चिम से पूर्व दाने-दुनके और गिलाजत की खोज में धावे करना, पत्थर मढ़ी गली में पहाड़ से आने-जानेवाले खच्चरों का गुज़रना । सन्ध्या समय विशन भड़भूंजे के छप्पर से धुएँ के बादलों के साथ ताजे भुनते चने, और मक्का की खीलों की सोंधी-सोंधी गन्ध । विशन की भट्ठी के सम्मुख गली और आस-पास के मुहल्ले के बच्चों का जमघट । उनकी महीन और तीखी आवाजें, कल्लू, नरायन, मत्ती, खिज्जू, रहीमा जिन्हें मैं प्रतिवर्ष बालिस्त-बालिस्त भर बढ़ता देखता आया हूँ, फिर वही सब कुछ, अदम्य आकर्षण बन्देगढ़ खींच लाता है, और फिर मैं उनसे उकताने लगता हूँ।

बन्देगढ़ आये डेढ़ सप्ताह गुजर गया । दोपहर की नींद के बाद जम्हाइयाँ लेता नीचे बरामदे में मोढ़े पर आकर बैठा था कि पूर्व की ओर से गुरो छोटी सी पोटली कांख में दबाये आती दिखायी दी ।

× × × ×

जम्हाई से खुले जबड़ों को बश में कर पूछा—'भाभी कब आ गयीं?'

कलमसिंह पिछले वर्ष भरती होकर लामपर चला गया था । हर महीने उसका मनीआर्डर घर आ जाता था । मनीआर्डर गुरो के नाम आता था । गुरो की सास इस बात से बहुत बिगड़ती । उसका कहना था लड़के का ब्याह कर उसे खो दिया ; काली चोटीवाली ने लड़के को जाने क्या कर दिया कि उसी का हो रहा । मां कुछ भी न रही ।

पिछले तीन महीने से कलमसिंह की कुछ खबर नहीं आ रही थी। माँ को सन्देह था, बहू ने उसे रुपये भेजने और खत लिखने को मना कर दिया है। बेटे के प्रति अपना क्रोध वह बहूपर झाड़ती। दुपट्टा गले में डाल वह गली किनारे की खिड़की के पास बैठ जाती और हाथ बढ़ाकर घंटों कोसती रहती। तूने यह किया, तूने वह किया, तूने उसे सिखा के लामपर भेज दिया, जल गया तेरा पेट जो मेरे बेटे की कमाई से नहीं भरा, तेरी कोख में पत्थर भरे हैं; तेरे माँ, बाप ऐसे, तेरे मायकेवाले वैसे—।'

छुट्टियों में गाँव आने पर सुना था, परेशान हो गुरो अपने मायके भुरोवाल चली गयी है। सहसा उसे सन्मुख देख पूछा—

'क्या अकेली ही ?'........कुशल तो है ?'

'हाँ वीर ! (भैया)—वो लोग आने नहीं देते थे। भाई कहते थे, रखड़ी (राखी) के बाद जाना। रखड़ी से पहले हम छोड़ने नहीं जाँयगे ! एक बहन है, उसे सावन में कैसे घर से निकाल दें। मेरा दिल नहीं माना। तीन महीने हो गये। लामपर से तुम्हारे भाई की कोई खबर ही नहीं आयी। चिट्ठी तो इसी पते से आती है। क्या करूँ चिट्ठी आती है तो सास दबा लेती हैं। मेरा दिल नहीं माना, चलूँ देखूँ कोई खबर आयी हो !' तुम कब आये ? इधर कोई चिट्ठी तो नहीं आयी ?'

विश्वास दिलाया—नहीं इधर दस दिन के भीतर तो नहीं आयी। आनेपर कलमसिंह की माँ मुझी से तो पढ़ाकर सुनती। जब चिट्ठी आयेगी, मैं तुम्हें ज़रूर खबर कर दूँगा।

पहाड़ का आँचल होने से बन्देगढ़ में बर्षा अधिक होती है। पहाड़ों पर चढ़ने से पहले बादल पर्वत श्रेणियों से टकराकर छलक पड़ते हैं। प्रायः दोपहर भर बादल बरसता रहता। उस समय खपरैलों पर पड़ती वर्षा की गूँज में ऐसी नींद आती है जैसे कोई थपकी देकर सुला रहा हो। दोपहर की नींद के बाद नीचे आ देखता, गुरो अपने पुराने

अभ्यास के अनुसार दोपहर में मेरे निचले बरामदे के सामने अपनी खिड़की के सामने चर्खा कातने बैठी है। मेरी दृष्टि प्राय: उस ओर जाती। उसका उदास पीला चेहरा, मैला सा कुरता और लाल छींट की सिलवार और सिरपर बेपरवाही से समेटा हुआ दुपट्टा। कभी गली में आहट पा आकाश से पृथ्वी को छूती जल के तारों में से उसकी दृष्टि मेरी ओर भी हो जाती है। पहचान पाने की एक हल्की सी मुस्कराहट, बादलों में से पल भरको झाँक जानेवाली धूप की भाँति, आकर विलीन हो जाती। सावन की उस सूनी, श्यामल दुपहरिया को किसी परस्पर रहस्य में बिताने का प्रोत्साहन गुरो के उदास मुख से न मिला। वह यों भावशून्य होकर चर्खा चलाती रहती, मानों वह चर्खे का ही अङ्ग है।

तीसरे पहर डाकिया, इलाही मियाँ छोटे-छोटे लड़के-लड़कियों का गोल पीछे लिये बोली-ठोली मारते हमारी गली से गुजरे। एक पोस्ट-कार्ड मेरे लिये था। साढ़े तीन महीने बाद कलमसिंह की भी चिट्ठी आयी। डाकिये को देख बुढ़िया हांफती हुई ऊपर की छत से उतरी और चिट्ठी ले पढ़ाने मेरे यहाँ आ गयी। गुरो ऊपर की खिड़की से देखती रही।

अपने नाम आया पोस्टकार्ड पढ़ सकूँ, इससे पहले अनेक आशीर्वाद दे बुढ़िया ने अपना सरकारी मोहर का लिफाफ़ा मेरे हाथ में दे दिया। कठिनता से वह दुखदाई समाचार बुढ़िया को सुनाया। कलमसिंह लाम पर खेत हो गया। बारह रूपया महीना गुरो के नाम कलमसिंह की पेंशन का हुकुम भी था।

बुढ़िया चीख मार, पछाड़ खा वहीं गिर पड़ी। ऊपर से मेरी दादी उतर आयीं। अगल-बगल के मकानों से, रामलाल और शेरसिंह के घर की स्त्रियाँ भी झांकने लगीं और भी बूढ़े बुढ़ियाँ एकत्र हो सिर और कपड़े नोचती, छाती पीटती कलमसिंह की माँ को सम्भालने लगीं। मैने एकबार ऊपर गुरो की ओर देखा, वह अपने चर्खे के सामने निश्चल बैठी थी।

कलमसिंह के मकान में कसबे भरके बूढ़े, बुढ़िया पल-पल भर

बैठने आये और आँखें पोंछते बुढ़िया को सान्त्वना दे चले गये।

चार पाँच दिन तक उस खिड़की से समय-असमय बुढ़िया का विलाप सुनाई देता रहा। गुरो के रोने का स्वर नहीं सुनाई दिया। बुढ़िया के विलाप में सीठने (मृतक की प्रशंसा) कोसने सभी शामिल थे। उस हृदय-विदारक चीत्कार के कारण अपने निचले बरामदे में बैठना सम्भव न होता। निरन्तर वर्षा के कारण कहीं जाना भी कठिन था।

दो सप्ताह से अधिक गुज़र गया। पहले पहर आकाश खुलकर धूप फैल रही थी। बुढ़िया आयी। उसकी आँखें सूजी हुई और लाल थीं। कलमसिंह की मृत्यु के समाचार का बादामी सरकारी कागज और तहसील के नाम पेन्शन के हुक्म का कागज ले किसी तरह जीना चढ़-कर वह हमारे यहाँ ऊपर ही पहुँची।

मेरी सौ बलायें अपने सिर ले, बुढ़िया ने फिर से कागज पढ़ाकर सुना। निरंतर बहते आंसुओं को दुपट्टे से पोंछने का व्यर्थ प्रयत्न करते हुए पूछा—पेन्शन के लिये मैं कहाँ जाऊँ? गुरो के प्रति संकेत कर बुढ़िया ने कहा—उसका क्या है, उसके मायके में सब कुछ है। वह जवान है, उसके हाथ-पैर चलते हैं, उसे क्या फिक्र है? मेरा तो सहारा वही लड़का था। इस कोख से तीन लड़के पैदा किये। यही एक बचा था। उसे भी डायन खा गयी। शंकर खत्री शंकरगढ़ जा रहा था, उसी के साथ जाने की बात कह बुढ़िया चली गई।

भादों जा रहा था। बादलों का रंग गहरा हो गया। गर्जन अधिक और वर्षा कम होने लगी। गुरो के चेहरे पर आने-जानेवाली मुस्कराहट की धूप भी विलीन हो गयी। कलमसिंह के छप्पर के निचले तल्ले में शंकर खत्री गुड़ भर लेता था। ऊपर खपरैल की छत के नीचे की कोठरी में उस खिड़की के अतिरिक्त बैठने की और जगह न थी। गुरो अब भी वहीं बैठी रहती। तेरहवीं के बाद से उसने फिर चरखा भी रख लिया। चरखे से तार भी खींचती ही थी। अब नीचे गली में आहट सुन

उसकी दृष्टि उधर न जाती और कभी उधर देखने लगती तो वहाँ देखने को कुछ न होने पर भी देखती ही रहती। जो कुछ वह देखती थी वह गली में नहीं, उसके मन में ही था। मैं अब भी कभी उसकी ओर देख लेता परन्तु देखने से दुख-सा होता और दृष्टि टिक न पाती।

वही तीसरे पहर का समय था। गुरो अपनी खिड़की में और मैं निचले बरामदे में। एक गहरी बौछार बरस कर पानी थम गया था। गुरो अपनी खिड़की की चौखट से सिर टिकाये नीचे गली की ओर आँखें किये बैठी थी। मेरी दृष्टि उसकी ओर गयी और फिर नीचे गली में।

वर्षा के बाद फजल और महम्दे की चीनी बत्तखें अपने चौड़े झिल्लीदार पंजों पर अपना बदन तौलतीं, चारे की खोज में गली में निकल पड़ीं। चौक की ओर से माल से लदे खच्चर भी गले में बँधे घुंघुरू बजाते चले आ रहे थे। बत्तखें खच्चरों से बिदक कर इधर-उधर हो जातीं। सहसा एक खच्चर का सुम एक चीना बत्तख की पीठ पर पूरा पड़ गया। खच्चर निकल गया। बत्तख छटपटायी। पर फड़फड़ा, अपनी पीली चोंच खोल बत्तख ने श्वास लेने का यत्न किया और ठण्डी हो गयी।

खच्चर ने नहीं समझा क्या हुआ? खच्चरवाले ने देखा। खिजलाहट से एक ओर थूक बत्तख को गाली दे बत्तखों के मालिक के पहुँच जाने से पहले ही निकल जाने के लिये, खच्चरों को जल्दी से हाँकता हुआ चला गया।

दुर्घटना से बत्तख का यों मर जाना अच्छा नहीं लगा। उधर से दृष्टि हटाने के लिये गुरो की खिड़की की ओर देखा—वह वैसे ही निश्चल चौखट से सिर टिकाये, अब भी कुचली हुई बत्तख को देख रही थी। दृष्टि फिर उसी ओर लौट गई।

खच्चरों के सुमों से बिदक कर भाग गयीं बत्तखें घटनास्थल पर

लौट आयीं। उन्होंने कुचली हुई बत्तख को घेर लिया। उसे सूँघ चोंच से उसके पर सहला, उसे सचेत कर सकने के यत्न में असफल हो एक-एक कर वे मृतक बत्तख को छोड़कर चली गयीं। रह गई केवल एक बत्तख जो अब भी अपनी चोंच कुचल गई बत्तख की चोंच में दे उसे उठाने का प्रयत्न कर रही थी; अब भी अपने पंजों से निश्चेष्ट बत्तख के शरीर को सचेत करने में लगी थी। अपने मृतक साथी की उपेक्षा से यह बत्तख व्याकुल हो कुरला उठती परन्तु उसे छोड़कर जा न पाती। मन में करुणा का उच्छ्वास-सा उठ आँखें सजल हो आयीं। उस ओर से दृष्टि चुराने के लिये गुरो की ओर देखा। वह अब भी अपलक, निश्चेष्ट बत्तखों के व्यवहार को देख रही थी। उसकी स्थिरता से धृष्ट हो आँख या नाक पर आ बैठने वाली मक्खियों को उड़ा देने के लिये ही उसका हाथ हिल जाता।

गुरो की दृष्टि का अनुसरण कर आँखें फिर बत्तखों के जोड़े की ओर चली गयीं। कुचली हुई बत्तख के बिछोह में वह जीवित बत्तख पागल हो गई। प्रेम और प्रणय के उपचारों के बाद भी अपने जोड़े को अचल देख, बत्तख कुड़-कुड़ाकर प्रणय की अन्तिम क्रिया में व्यस्त हो गई। उस ओर देखते अच्छा न लगा; विशेष कर एक स्त्री की दृष्टि के सामने। आँखें फिरा लीं परन्तु झुकी हुई दृष्टि गुरो की खिड़की की ओर से घूमकर लौटी। वह अब भी उसी प्रकार निस्संकोच मृतक और जीवित बत्तख के जोड़े की केलि-क्रिया को देख रही थी। गुरो के प्रति सहानुभूति होने पर भी उसका वह निस्संकोच और फूहड़पन भला न लगा। मोढ़े से उठ मैं ऊपर चला गया।

कुछ देर बाद कलमसिंह की माँ की पुकार सुनाई दी। वह बहू पर बिगड़ रही थी—साँझ होने को आई, थकी माँदी लौटकर क्या पानी लेने भी मुझे ही जाना होगा?

देखा, गुरो अब भी चौखट से उसी प्रकार टेक दिये बैठी है। बिल-

कुल स्थिर। सास की बात जैसे उसने सुनी ही नहीं। उसकी वह स्थिरता भयानक सी लगी। उसी पल कलम की माँ सिर पीट कर चीखती सुनाई दी—'हाय मैं उजड़ गई....!'

चोट खा हृदय धक से रह गया। दृष्टि फिरा ली। नीचे पत्थर मढ़ी गली में दिखाई दिया वही बत्तखों का जोड़ा! कुचली हुई बत्तख के ऊपर ही उसका साथी निर्जीव पड़ा था। उस समय उन क्षुद्र जीवों की ओर क्या ध्यान जाता?

गुरो की सास के विलाप से पड़ोस की स्त्रियाँ और मर्द आ जुटे। अनेक प्रकार से बुढ़िया के दुर्भाग्य और शोक का चर्चा हुआ। मुझे भी जाना पड़ा। रामलाल ने बिना किसी के कहे, कफन का कपड़ा ला दिया। शंकर खत्री अर्थी के लिये बाँस, फूस और रस्सी ले आया। दुर्भाग्य से उसी समय फिर बूँदें आ गयीं। धीरे-धीरे अर्थी बन रही थी और चर्चा चल रही थी गुरो की बदकिस्मती की:—मरना तो था ही, दस रोज पहले ही मरती! नसीबन, सुहागन तो मरती। अर्थी पर फुलकारी पड़ जाती।

पानी रुका तो अँधेरा हो गया। श्मशान दूर था। फिर भी मुहल्ले में किसी गरीब का मुर्दा पड़ारहे, यह कैसे हो सकता था। लालटैन जला ली गई। लोग अर्थी पर कंधा लगाने को ही थे कि हवल्दार साहब ने आ दारोगा साहब का हुक्म सुनाया। 'लाश बिना तहकीकात के नहीं उठ सकती।'—बेबस लोग इधर-उधर खिसकने लगे। दारोगा साहब स्वयं कुछ दूरी पर खड़े रहे। रामलाल, शंकर खत्री और मैंने आगे बढ़, दारोगा साहब से बातें कीं।

दारोगा साहब को मामले में शुबह की गुंजाइश जान पड़ती थी। मरहूमा को कोई बीमारी नहीं थी। सुबह के वक्त पीपलवाले कुएँ से पानी का घड़ा लाते उसे देखा गया था। बुढ़िया का सलूक उसके साथ अच्छा नहीं था! मरहूम सिपाही ने अपनी पेंशन का वारिस अपनी

बीवी को मुकर्रर किया था। बुढ़िया इससे खुश नहीं थी। बोले— 'साहब क्या किया जाय; हमें अफसोस है ऐसे वक्त सङ्गदिली से काम लेना पड़ता है लेकिन जुर्म की तहकीकात करना पुलिस का फ़र्ज़ है।'

पिछले दारोगा साहब होते तो और बात थी। रामलाल, शंकर खत्री और हमारे अपने लालाजी का उनसे रसूख था। कसबे की इज्जत रखने के लिये बीसियों वारदातें दबा दी गयीं। दारोगा गुलजारी लाल खाने पीने के शौकीन थे। लोग कहते थे—उनका पेट बड़ा है लेकिन आँखों में लिहाज़ भी था।

यह दारोगा साहब ऐसे रूखे हैं कि किसी की हिम्मत उनसे कुछ कहने की नहीं होती। घर के और नीयत के भी वैसे ही हैं। पहले दारोगा साहब के यहाँ दो भैंसें थीं, तीन नौकर थे और दो घोड़ियाँ। इनकी बेगम खुद रोटी थाप लेती हैं। दूध के लिये बकरी और सवारी के लिये मज़बूरन एक टट्टू है। हरदम वर्दी डाटे हैं, जैसे दूसरा कोई कपड़ा ही नहीं।

लाचार हो लौट आये। रात भर नींद न आई। दारोगा को शक है कि पेंशन हथियाने के लिये बुढ़िया ने बहू को कुछ खिला दिया। लाश होशियारपुर जायेगी। तहकीकात का मतलब है, शव की चीर फाड़ (Post Mortem) बुढ़िया हिरासत में ले ली गयी थी। बुढ़िया के प्रति सहानुभूति का विचार नहीं आया, परन्तु गुरो के शव की चीर-फाड़ के विचार से मन बैठा जा रहा था। दिल की धड़कन सहसा बन्द हो जाने से उसकी मृत्यु हो गयी थी, पर क्यों? थानेदार साहब की तसल्ली के लिये क्या जवाब हो?

रात भर गुरो की मृत्यु के बारे में, दारोगा साहब को संतुष्ट कर सकने लायक कारण सोचता रहा। गुरो के हृदय की गति रुककर उसकी मृत्यु हो जाने की परिस्थितियों पर ग़ौर करते समय केवल नीचे

गली में बत्तख के कुचले जाने और दूसरी बत्तख के अपने साथी के लिये प्रणयाकुल और कामातुर हो प्राण दे देने की ही घटना दिखाई देती थी। वही क्षुद्र जीवों का व्यापार ! सहसा मन में ख़्याल आया—अपने जोड़े की मृत्यु के दुख से पक्षी के प्राण दे, सती हो जाने की घटना ने गुरो के मन पर आघात किया और वह सती हो गयी। एक सती के शव के निरादर की बात सोच मन तड़प उठा। शेष रात नींद न आई। सुबह उठ, दारोगा साहब को सारी परिस्थिति समझाने का निश्चय कर पड़ रहा।

दारोगा साहब रोज़नामचा लिये बैठे थे। अंग्रेजी में बोला इससे कुर्सी मिल गयी। गत संध्या की मृत्यु के विषय में बात शुरू की। अपनी बकरदाढ़ी को थामे दारोगा साहब प्रकट में ध्यान से मेरी बात सुन रहे थे और 'जी…जी' हुंकारा भरते जाते थे।

बात पूरी होने पर उन्होंने पूछा—'मास्टर साहब ! आख़िर आप मौत की वजह क्या बतायेंगे ?"

गम्भीरता से उत्तर दिया—"विरह की पीड़ा…………सदमे मुफ़ारकत !'

'मुआफ़ कीजिये'—अपनी कुर्सी पर करवट बदलकर उन्होंने उत्तर दिया—'पुलिस की दफ़ा में ऐसी कोई चीज़ नहीं है।'

सती की मान रक्षा के प्रयत्न में असफल हो, पुलिस की दफ़ा के सन्मुख सिर झुका मैं क्षुब्ध और असहाय लौट आया।

११

रिज़क

चौथे पहर अदालत से लौट मि० खन्ना ने बैठक के दरवाज़े पर दस्तक दी। भीतर से सांकल बन्द नहीं थी। दरवाज़ा खुल गया। कौतुहल से उन्होंने सोचा, कौन उनकी प्रतीक्षा में बैठा है? देखा तो बग़ल वाले सोफ़ा पर स्वयम् मिसेज़ खन्ना बैठी थीं और उनके समीप कोई दूसरी भले घर की स्त्री। खन्ना का एक बरस का बालक इन अभ्यागत भले घर की स्त्री की गोद में था। महिलाओं में धीमें स्वर में बात चीत हो रही थी। इसलिये पति से चार-आँख हो जाने पर भी वे कुछ बोले नहीं।

हाथ की मिसिल को बैठक की तिपाई पर छोड़ खन्ना, साथ के कमरे से भीतर जा, कपड़े बदलने लगे। वे सोच रहे थे, यह कौन नई सहेली इनकी आज आई हैं। पहले कभी देखा हो, याद नहीं पड़ता। देखने में बुरी नहीं। उम्र इनसे कुछ कम ही हो। बदन लम्बा और लचीला। आँखें काफ़ी बड़ी और रङ्ग भी साफ़। धोती या साड़ी पहरने का ढङ्ग पढ़ी-लिखी जैसा। समानता के भाव से, सोफ़ा पर साथ बैठी है अवश्य, पर एक हिचक सी दिखाई पड़ती है।

स्निग्धता और कोमलता का रूप जो खास ढङ्ग के भोजन या कठिन श्रम न करने से, सौन्दर्य न रहने पर भी भले घर के लोगों के चेहरे पर बना रहता है, अलबत्ता उतना स्पष्ट न था। धोती के किनारे में सौम्यता की अपेक्षा भड़क अधिक थी। यह सब बातें एक-एक करके न सोचने पर भी खन्ना के विचार में घूम गईं।

कुछ मिनिट बाद भीतर आ जब श्रीमती ने खन्ना के नाश्ते के लिये नींबू का शरबत जल्दी लाने के लिये नौकर को हिदायत की ; खन्ना ने प्रश्न किया—"यह नई सहेली कौन थी ?"

श्रीमती ने बताया—उनके मकान के साथ की गली में चार रुपया महीने के जो क्वार्टर हैं, उन्हीं में यह लोग कुछ दिन पहले आये हैं। ऐसे ही पड़ोस में मिलने के लिये चली आई, बेचारी ब्राह्मणी हैं।

सामने रखे शरबत के गिलास की ओर न देख खन्ना ने शंका की—"रङ्ग-ढङ्ग तो चार रुपये महीने के क्वार्टर जैसा नहीं जान पड़ता।"

"औरत भली है"—श्रीमती ने उत्तर दिया—"बेचारे मुसीबत में हैं। तीन बच्चे है। मर्द बेचारा बेकार है। किसी के यहाँ काम करता था, मालिकों ने कह दिया अब काम नहीं है। प्राइवेट बिज़नेस में यही तो खराबी होती है।"

बात को आगे चलाते हुए खन्ना ने पूछा—"तो फिर गुज़ारा कैसे चलता है ?"

"मायके में अच्छे खाते-पीते हैं, कुछ सहायता कर देते हैं।"—श्रीमती ने उत्तर दिया।

जाने क्या सोचकर शरबत का गिलास पीते हुए खन्ना ने कह दिया—"मायके में सभी स्त्रियों के, छत पर छप्पन बीघे पोदीना होता है।"

यह ताना श्रीमती को बहुत प्रिय नहीं जान पड़ा। मामूली तौर पर झमक कर उन्होंने कहा—"तो होने दो, तुम्हें क्या पड़ी है ?"

× × ×

इसके बाद रविवार के दिन दोपहर के समय खन्ना भीतर की बैठक में तख़्त पर तकिये के सहारे लेटे कुछ पढ़ रहे थे और श्रीमती नीचे दरी पर बैठी मशीन से मुन्ने के लिये नये फ्राक सी रही थीं। सहसा भीतर की ओर के दरवाज़े का परदा हटा। पड़ोस की वही

नई सहेली बेतकुल्लफ़ी में चली आ रही थीं कि सहसा लज्जा से सिमिट कर पीछे हट गईं। इस सिमिट कर पीछे हट जाने में एक ऐसी झपट सी थी कि खन्ना और श्रीमती दोनों ही की दृष्टि उस ओर गई। खन्ना के होठों पर मुस्कराहट फिर गई।

मशीन के हत्थे के पहिये को रोक पर्दे की आड़ से दृष्टि बाहर पहुँचा श्रीमतीजी ने पुकारा—"आ जाओ न, यहीं आ जाओ!......क्या हर्ज़ है!" इस आग्रह से सहेली माथे का कपड़ा ज़रा आगे खिसका, दृष्टि नीचे किये भीतर आ गईं। खन्ना की ओर पीठ कर, श्रीमती के बहुत समीप, वे लज्जा शील कुलबधू के ढङ्ग से बैठ गईं। शील व्यक्ति और स्थान के अनुसार होता है'। किसी को पीठ दिखाना असभ्यता है परन्तु कुलबधुओं का शील पुरुषों को पीठ दिखाने में ही है।

सहेली कुछ देर संकोचवश बिलकुल चुप बैठी रहीं। मैशीन की खर-खर-खर आवाज़ और हाथ में थमी हुई पुस्तक पर आँख गड़ाये हुए खन्ना के सतर्क कान उस ओर लगे थे। श्रीमती के कुछ पूछने और बोलने का शब्द अलबत्ता अवश्य सुनाई दिया परन्तु सहेली का कण्ठ स्वर कैसा है, यह खन्ना नहीं जान पाये। वे प्रश्नों का उत्तर दे रही थीं या तो केवल सिर हिला संकेतों द्वारा या फिर इतने धीमे स्वर में कि कोई शब्द खन्ना तक पहुँच भी पाया तो वह केवल सिलाई के सम्बन्ध में था।

कुछ देर बाद खन्ना को मालूम हुआ, वे मुस्करा देती हैं और एक सीमा तक ज़िन्दा दिल हैं लेकिन बहुत सम्भल कर और बच-बच कर। लगभग दो घण्टे बैठे रहने के बाद बिनय की एक लचक से उन्होंने चलने की आज्ञा माँगी।

खन्ना को पीठ की ओर से यह लचक बहुत शील पूर्ण नहीं जान पड़ी। असभ्यता भी उसमें कुछ नहीं थी, थी केवल एक सजीवता या चुलबुलापन।

फिर आने का वायदा कर उनके चले जाने पर खन्ना श्रीमती से

बोले—"सहेली तुम्हारी है ज़ोर की.......!" परिहास की गुदगुदी से आँखों और होठों पर मुस्कराहट ला उन्होंने पूछा—"कैसे....?"

"देखा नहीं"—खन्ना ने हाथ की पुस्तक एक ओर रखते हुए कहा—"कमर नागिन सी बल खाती है !"

"पसन्द आगई तुम्हें ?"—मशीन को रोक बख़िया समाप्त कर धागा तोड़ते हुए श्रीमती ने परिहास में गहरे जाते हुए पूछा। उच्छृङ्खलता का आनन्द लेने के लिये तख्त पर पट लेट और तकिये को बाहों में दबाते हुए खन्ना ने कहा—"अरे पसन्द-वसन्द क्या ? बस देख लेते हैं और तपिश दिल की बुझा लेते हैं....अपने तो साधू आदमी हैं।"

नया बखिया आरम्भ कर श्रीमती बोलीं—"क्या कहना, बड़े साधू हैं तभी तो कमर के बल की परख है। पुरुषों को जाने क्या आदत होती है ; यही सब देखा करते हैं।" इसके बाद करुणा द्रवित स्वर में बोलीं—"बेचारी दुखिया है। भले घर की लड़की है। तीन बच्चे हैं। मर्द है सो बेकार बैठा है। कहाँ तक मायके से लाकर कुनबा पाले। सीना-पिरोना सीख ले या कुछ काम कर ले, तो भी कुछ हो। वैसे तो हिम्मती, होशियार है।"

इसके बाद सहेली के नाम का पता खन्ना को चल गया। सब लोग उसे 'केवल की माँ' कहकर पुकारते थे। थोड़ी-बहुत देर के लिये वह श्रीमती जी के यहाँ आकर सीने-पिरोने या घर के किसी दूसरे काम में मदद कर जातीं। मुन्ना को बहुत प्यार से खिलातीं। प्रायः खन्ना से देखा-देखी हो जाती। रोज़-रोज़ की बात हो जाने से माथे का कपड़ा आगे बढ़ाने की भी ज़रूरत न रही। सिर के काले घुँघराले बाल साड़ी के आँचल से खूब दीखते रहते। उसकी मुस्कराहट फूटने लगी और दो एक-बात बोलने भी लगा। श्रीमती के सामने ही खन्ना भी बात कर लेते—"तुम्हारे 'उन्हें' कोई काम-वाम कहीं मिला या नहीं ?"

नज़र ऊपर उठा के वह उत्तर देती—"आप इतने बड़े आदमी हैं हैं कहीं कुछ करें तब न ?" या इसी तरह की कोई और बात ।

× × ×

केवल की माँ श्रीमती को बहिनजी कहकर पुकारती थी। साली-पन की गन्ध व्यवहार में आ जाने के कारण बहुत अधिक पर्दादारी और संकोच की ज़रूरत स्वयं ही न रही । ज्यों-ज्यों श्रीमती को 'केवल की माँ' के संकट का हाल मालूम होता जाता, उनकी सहानुभूति उसके प्रति बढ़ती जाती। एक सन्ध्या जब खन्ना और श्रीमती भोजन के लिये थाली पर बैठने जा रहे थे। वह जल्दी में आई और श्रीमती को एक ओर बुला चुपके से कुछ बात कर चली गई ।

लौटकर श्रीमती ने करुणा पूर्ण स्वर में कहा—"देखो न! घर में दो पैसे नहीं कि तेल लाकर दिया जला सके। अन्धेरे में लड़के डर के मारे रो रहे हैं।" जिस स्वर और मुद्रा में, बरफ में दबे हुए बनारस के लङ्ड़ा आम चाकू से काटते हुए, श्रीमती ने अत्यन्त विह्वल स्वर में कहा उसे सुन, तले हुए परवल से परौंठे का ग्रास खन्ना को ऐसा जान पड़ा मानो मुँह में रेत भर गया हो। मुन्ना को आम की एक फाँक दे श्रीमती ने नौकर से बच्चे को दूसरी ओर ले जाने के लिये कहा। कटा हुआ आम खन्ना की थाली में रखते हुए उन्होंने पूछा—"कैसा है ?"

ध्यान केवल की माँ की ओर लगा रहने से कुछ बेपरवाही से आम चख खन्ना ने उत्तर दिया—"अच्छा है।" यह समझ कर कि आम पर खर्चे पैसे व्यर्थ गये, श्रीमती बोलीं—"लखनऊ में तो आम खाने का धर्म नहीं····मरे आधी ढेर से तो कम आम देते ही नहीं। अब कोई ग़रीब आदमी डेढ़ रुपया रोज कैसे खर्च सकता है ? और फिर आम क्या आ रहे हैं, पैसे बरबाद करना है, स्वाद तो है ही नहीं।"

खन्ना के लिये आम का स्वाद बिलकुल नीरस हो गया। उन्होंने

कहा—"सवा-डेढ़ रुपया जैसे कुछ होता ही नहीं! किसी ग़रीब के बाल-बच्चों का दो दिन पेट भर सकता है।.......उसके बच्चों के लिये दो-तीन आम दे देतीं?"

आम काटना जारी रखकर श्रीमती ने उत्तर दिया—"एक अठन्नी दे तो दी। रुपया-दो रुपये पहले भी दो-चार बार ले जा चुकी है। ऐसे काम थोड़े ही चलता है। वो मरा—केवल का बाप-कुछ करता ही नहीं। आठ-दस साल से बेकार है। यही, कहीं महीना-पन्द्रह दिन नौकरी करता है और फिर उससे कुछ होता नहीं। उसे नौकरी मिलती ही नहीं। ऐसे नालायक शादी क्यों कर लेते हैं?....बच्चे क्यों पैदा करते हैं?"

अविश्वास और विस्मय से खन्ना ने पूछा—"आठ-दस साल से? तो गुज़ारा कैसे चलता है?" तब क्रोध में रहस्य का पुट मिलाते हुए श्रीमती ने उत्तर दिया—"अरे कुछ न पूछो इन लोगों की? महरी और मेहतरानी जाने क्या-क्या कहती थीं? पहले जिस मुहल्ले में रहते थे, वहाँ इतना गंद फैला और जब बदनामी के मारे रहना मुश्किल हो गया तब यहाँ आये हैं। पर बदनामी पीछे-पीछे यहाँ भी आ रही है।"

आशंका से सिर उठा खन्ना बोला—"तो तुम परमेश्वर के लिये इस बीमारी को न पालो! अपनी इज़्ज़त और हैसियत का भी तुम्हें कुछ ख़याल है?"

श्रीमती कुछ तिनक कर बोलीं—"किसी का दिया तो खाते नहीं कि दबते फिरें। कोई दुखिया अपना सुख-दुःख कहने आये तो उसे कैसे निकाल दें? वह बेचारी ग़रीब है तो उसमें हज़ार ऐब हैं। दस बरस से उस निखट्टू और तीन बच्चों को पाल रही है सो नहीं दीखता। करे क्या? वैसे औरत बुरी नहीं, पर जब तीन बच्चों को भूखा सिसकते देखे तो करे क्या? बेचारी फूट-फूट कर रो रही थी अपने कर्मों को? कमबख़्त के लिये दुनिया में कोई काम ही नहीं रह गया। अरे मर भी जाता तो बेचारी की नाव एक तरफ़ लगती;....उल्टे धौंस देता है।

उसे मैंने समझाया कि यह ज़िल्लत और बदनामी की ज़िन्दगी भी क्या है तो रोकर कहने लगी जो कहो करने को तैयार हूँ।"

खन्ना तन्मयता से केवल की माँ की बात सोच रहे थे, बोले—"तो वेश्या और क्या होती है.......बस ज़ाहिर नहीं है।"

"हाँ तो फिर क्या करे?"—भोजन समाप्त कर थाली सरकाते हुए श्रीमती ने कहा—"दुनिया भरमें नंगा नाच नाचने से अच्छा ही है कि बच्चों को लेकर घर में बैठी तो है।"

कुछ कठोर होकर खन्ना ने कहा—"तो यह लोग कुछ ऐसा ही काम क्यों नहीं कर लेते? महरा और महरी भी तो आख़िर गुज़र करते ही हैं?"

खन्ना के अज्ञान से कुछ खीझ श्रीमती बोलीं—"तुम कैसे यह सब कुछ कह डालते हो। बीस-बिसवे ब्राह्मण है। महरे का काम करने लगेगा तो क्या कम थुक्का-फ़जीहत होगी? और फिर उससे ऐसा काम कोई करायेगा ही क्यों? किसे आफ़त मोल लेनी है?

"मैंने उसे कहा, जीजी को बच्चा सम्भालने के लिये एक औरत की ज़रूरत है। भले आदमी हैं उनके यहाँ दूसरे नौकर चाकर हैं ही। बस बच्चे का काम है। तो कहने लगी—भई और सब कुछ कर देंगे पर गू-मूत हमसे कैसे धोया जायगा। आख़िर तो ब्राह्मण हैं, लोग क्या कहेंगे?"

"....यों तो गुप्ता बाबू से कहकर रेडक्रास में नर्स का काम सीखने लगे। काम भी सीख जाय और बीस-पच्चीस रुपया वजीफ़ा भी मिलने लगे पर जात को क्या करें?"

खन्ना को क्रोध आ गया, बोले—"मरने दो सालों को। सब कुछ करके भी ब्राह्मणपना बाकी है।"

पति के क्रोध को व्यर्थ बताते हुए श्रीमती ने धैर्य से कहा—"नहीं आजकल मशीनी कसीदे के किनारे की साड़ियों का बहुत रिवाज़ चल रहा है। अपनी सिंगर मशीन के लिये दो-चार पुर्ज़े खरीद लें। अपने

काम भी आयेंगे और वह कढ़ाई पर साड़ियाँ ले आया करे। महीने में बीस-पच्चीस साड़ियाँ मैं ले दूँगी क्या बड़ी बात है ? उस रोज़ डाक्टरनी, महरोवा की बहू और न जाने कितनी ही औरतें कह रही थीं। फिर किश्त पर अपनी मशीन ले लेगी। ख़याल है, काम कर लेगी। अभी आँख का पानी नहीं मरा।"

केवल की मां श्रीमती जी के यहाँ आती-जाती रहती। कभी घर से अपने कपड़े काट लाती और मशीन पर सी लेती। कभी श्रीमती का कोई काम करती और बातचीत भी चलती रहती। निसंकोच के कारण खन्ना से दोटूक मज़ाक भी चलता रहता। कभी खन्ना कह देते आज साड़ी ज़ोरदार पहने हो ? कभी खन्ना के दफ़्तर में अकेले रहने पर और पानी का गिलास माँगने पर श्रीमती कह देतीं—"जाओ, जल दे आओ।"

आशंका और भय से आँखें फैला, कमर को तनिक हिला केवल की मां कहती—"हाय, हमें डर लगत है" और फिर गिलास ले दफ़्तर में चली आती।

संकोच रहा नहीं। इस लिये केवल की मां को और श्रीमती को एतराज़ न होने पर मज़ाक में भी कोई भय न था। कोई विशेष अभिप्राय न होने पर यों ही ज़रा मज़ेके लिये खन्ना केवल की मां के अकेले दफ़्तर में या बैठक में आ जाने पर कह देते—"बैठिये जनाब !"

लज्जा से उसका तिनकना देख उनके चेहरे पर मुस्कराहट आ जाती और लहू में मामूली सी चिनचिनाहट। जैसे बिहारी सतसई के दोहे पढ़ने से या फ़िल्म में नायक-नायिका को एकान्त में देखने से होता है।

कसे हुए ब्लाउज़ में उसके जोबन और गेहुआँ रङ्ग की बाहों पर नज़र दौड़ाने से एक स्फूर्ति सी अनुभव होती। श्रीमती के अत्यन्त कोमल और खूब गोरे रङ्ग में भी वह बात न थी—चाहे श्रीमती के जोबन का उफ़ान उतर जाने के कारण हो या खन्ना के लिये उसमें

नवीनता न रहने के कारण ! जैसे नित्य परौंठे खाने वाले का मन कभी बाजरे की रोटी और अमिया की चटनी की ओर लपक जाता है ।

× × ×

खन्ना ने एक दिन पूछा—"तुम्हारा मायके का नाम क्या है ?" "हाय" !—ठोड़ी झुका और आँखे फैला केवल की मां ने कहा—"मायके का नाम कहीं बोला जाता है ।"

खन्ना ने रूठ कर कहा—"हमें नहीं बताओगी, अच्छा न बताओ ।" मेज़ पर शरीर का बोझ डालते हुए वह बोली—"अच्छा बतायें ? ....चम्पा ! किसी से कहना नहीं ।"

साड़ी और ब्लाउज़ की बानक का जिक्र खन्ना ने किया । चम्पा ने कहा—"इतने बड़े वकील साहब कहलाते हैं, हमें तो कभी एक भी साड़ी नहीं ले दी । देखो सब छुन गई !" अपनी साड़ी की ओर संकेत कर उसने कहा ।

"अच्छा ले देंगे"—खन्ना ने उत्तर दिया । वे जानते थे, श्रीमती कई धोतियाँ चम्पा को दे चुकी हैं पर शायद वह एक अच्छी नई सी धोती चाहती है ।

चम्पा का साहस बढ़ चुका था । खन्ना को अकेले में देख कभी वह रुपये-दो-रुपये की फ़र्माइश भी कर देती । खन्ना का विचार था, चम्पा को जो कुछ दिया जाय, वह श्रीमती ही दें ताके मामला साफ़ रहे ।

खन्ना ने कहा—"अपनी बहिन से क्यों नहीं कहतीं ?"

उसकी कुर्सी के बिलकुल समीप आ चम्पा ने उत्तर दिया—"वाह, जो हम तुमसे कह सकती हैं सो बीबी जी से थोड़े ही कह सकती हैं....।" आँखों में आखें डाल, उसके देखने का ढङ्ग ऐसा था कि खन्ना मुस्कराये बिना न रह सका । उसने देखा, खन्ना की आँखों में लाल डोरे फिर आये हैं और उसका कण्ठ कुछ बोझल हो गया है । सहसा

उसने कहा—"अब चलें, कोई आ जायगा, हमें डर लगता है।"

खन्ना बोला—"ज़रा ठहरो न !"—ठहर वह गई और मेज़ के पास मंडराती रही। अपनी पहुँच के भीतर उसके शरीर के इठलाने से खन्ना सोचने लगा—इसके शरीर के स्पर्श से प्राप्त होने वाली अनुभूति जाने कैसी होगी ?

उसकी बाँह पकड़ खन्ना ने कुर्सी पर बैठाने का यत्न किया। वह जैसे हड़बड़ा कर उसके कन्धे पर आ टिकी। खन्ना की बांह उसकी अशिथिल कमर पर चली गई, खन्ना के लिये वह अनुभूति अत्यन्त रोमांचकारी थी, जैसे उसका मस्तिष्क घूम सा गया, उसे समेटते हुए खन्ना ने पूछा—"चम्पा हम से यों भागती क्यों हो ?" चम्पा ने शिथिल हो जवाब दिया—"अरे हम क्या भागेंगे ! हम ग़रीब आदमी हैं, तुम बड़े आदमी हो !" खन्ना कुण्ठित हो चुप रह गया।

चम्पा ने मेज़ के नीचे फैले अपने पैर से खन्ना के पैर के अँगूठे को दबा कर पूछा—"चुप क्यों हो गये ?" ज़बरदस्ती मुस्कराने का यत्न कर खन्ना ने उत्तर दिया—"तुम कहो।"

चम्पा फिर उसकी बग़ल में पहुँच गई और खन्ना की बाँह उसकी कमर में परन्तु मनमें उसके एक भीरुता समा रही थी। चम्पा ने कहा—"हमें दस रुपये का बड़ा ज़रूरी खर्च है ! चाहे हम फिर फेर देंगे।"

किसी काम के लिये श्रीमती ने रुपये खन्ना को दे रखे थे। यों रुपये उनके अपने पास रहते न थे। उस समय दस का एक नोट निकाल कर दिये बिना खन्ना रह न सका।

रुपयों का हिसाब समझाते समय खन्ना को कहना पड़ा, दस रुपये जाने कहाँ गिर गये या कहीं ग़लती से एक की जगह दो नोट दे दिये।

श्रीमती ने चिढ़कर कहा—"रुपया, अठन्नी तो खोया ही करते थे

अब नोट भी खोने लगे। ऐसी ही भारी आमदनी है न ? तुम्हारी बेपरवाही की तो हद है !" बात टल गई।

× × ×

उस दिन था रविवार। खन्ना चाहते थे, बैठक में बैठना और श्रीमती कह रही थीं—"फायदा क्या ? यहीं तख़्त पर बैठो। दो जगह पङ्खा चलाने से लाभ ?"—"एक मिसिल ज़रूरी देखनी है कल तारीख़ है।"—खन्ना टाल गये और दफ़्तर में जा बैठे।

चम्पा कभी गली के दरवाज़े से और कभी सड़क से आती थी। सड़क के दरवाज़े से वह आयी और सांकल लगा ली। फिर धीमे स्वर में पूछा—"बीबी जी कहाँ हैं ?"

—"भीतर।"

"यह दरवाज़ा मूंद दूँ !"—उसने पूछा और बहुत धीमे से मूंद दिया।

चम्पा सामने बैठ गई। खन्ना की नसों में रक्त का वेग तीव्र होने लगा। चम्पा घर पर अभी झगड़ा कर के आ रही थी। कानों के बुंदे उसने २५) में बनिये के यहाँ रखाये थे, सो सूद समेत ४०) के हो गये। बनिया कहता था, दो दिन में छुड़ा नहीं लोगे तो हम बेच डालेंगे, फिर मत कहना। खन्ना चाहे तो ४०) दे सकता है परन्तु वह माँगे कैसे ? अभी इतना ज़ोर दे तो किस बात पर ?

खन्ना से सट कर खड़ी हो उसने कहा—"कहो, उस रोज़ तुम कहते थे आने को ?" खन्ना को मुग्ध भाव में निश्चल बैठे देख उसे उकसाने के लिये चम्पा ने कहा—"तो फिर हम भीतर जाँय बहिन जी के पास ?"

"नहीं, बैठो तो"—खन्ना ने उत्तर दिया।

बग़ल की कुर्सी पर चम्पा बैठ गई। कमर हिला, दाँयें हाथ की उंगली ठोड़ी पर रख नज़र तिर्छी कर उसने फिर पूछा—"कहो न ?"

उसकी ओर देख खन्ना की आँखें झुक गईं, मेज़ के नीचे अपने पैर से खन्ना का पैर गुदगुदा, चम्पा ने कहा—"क्या हो तुम भी? हम बतायें……तुम औरत हो और हम मर्द हैं?"

इस ललकार से सचेत हो खन्ना ने चम्पा की बाँह ज़ोर से दबाई ही थी, उसी समय धीमे से दरवाज़ा खुला और पर्दे की आड़ से श्रीमती ने झाँका। झाँककर कुछ क्षण वे जैसे समझती रहीं और फिर लौट गईं।

× × ×

तीसरे दिन खन्ना के मकान के पास की गली के चार रुपये वाले क्वार्टरों के सामने हाथ का ठेला खड़ा था और उस पर फटे वस्त्र और टूटे बक्सों की मामूली सी गृहस्थी लादी जा रही थी। पड़ोसी वितृष्णा से देखकर कह रहे थे—"लच्छन ही ऐसे हैं……किसी भले पड़ोस में गुज़ारा हो कैसे?"

ऊपर दोमंज़िले की खिड़की से देखा महरी ने श्रीमती को बताया—"वह देखो, केवल की मां सामान लिये चली जा रही है।"

श्रीमती उठी नहीं। घृणा से उन्होंने कहा—"मरे कलमुँही…… बहते बिच्छू को जल से बाहर निकालो, वह पहले उंगली में ही डङ्क मारता है।"

एक हाथ में लालटेन, दूसरे में छोटे लड़के की उंगली थामे केवल की मां बड़बड़ाती चली जा रही थी—"अरे कोई किसी का रिज़क थोड़े ही छीन लेगा। भगवान सबके जुलम देखते हैं।……उसकी धरती पर सबको जगह है। आदमी का बस चले तो कोई किसी को जीने थोड़े ही दे ……।"

१२

भगवान् किसके ?

पिता जी धार्मिक प्रवृति के थे। पढ़े-लिखे लोग उन्हें श्रद्धा से महाशयजी कह कर पुकारते। जिस ओर वे जाते, आदर-भाव से नमस्ते के लिये हाथ उठने लगते। ईश्वर में उनका विश्वास अखण्ड और अथाह था। प्रार्थना करते समय उनका चेहरा करुणामय और स्वर गद्गद् हो जाता। आर्यसमाज-मन्दिर में प्रति रविवार को वे ही सामूहिक प्रार्थना कराते। वे प्रार्थना के शब्द बोलते जाते दूसरे सज्जन नेत्र मूँदे अपने मन में उस प्रार्थना का अनुमोदन कर भगवान् से प्रार्थना कर लेते।

पिताजी की अभिलाषा थी, उनकी सन्तान भी ईश्वर की भक्त और सदाचारी बने। हम सभी बहिन-भाइयों को वे अपने साथ प्रति रविवार आर्यसमाज-मंदिर में ले जाते। वहाँ हम लोग भगवान् की स्तुति के भजन गाते, हवन और प्रार्थना करते और धार्मिक उपदेश सुनते। इसके अतिरिक्त प्रतिदिन घर पर भी सुबह-शाम संध्या और प्रार्थना के समय भी सब बहिन-भाई आँखें मूँदे, पल्थी लगा संध्या और प्रार्थना में योग देते और भगवान्-भक्ति के भजन गाते।

पिताजी ने हम लोगों को आर्यगायन और आर्य-संगीत रत्न-माला के अनेक भजन कंठ करवा दिये थे। संध्या के बाद उनके स्वर में स्वर मिला हम सब लोग गाते—

ओम् जय जगदीश हरे,
पिता जय जगदीश हरे........
मैं मूरख, खल, कामी
कृपा करो भरता ! इत्यादि

पिताजी नित्य प्रार्थना करते—"हे करुणा के सागर ! हम पाप के कीचड़ में फँसे हुए अधम प्राणी हैं, आपकी दया का ही सहारा है। हमारे मन में राग, द्वेष, लोभ, मत्सर सभी दुर्गुण भरे हुये हैं। हे दयामय, हमारे हृदय की अपवित्रता को दूर कर शुद्धता दीजिये ! हे परम पिता, हमारे घोर अपराधों को क्षमा कीजिये, क्षमा कीजिये, क्षमा कीजिये,........" वे दोनो हाथ जोड़ मस्तक नवा देते और फिर "ओम् शान्ति ! शान्ति। शान्ति !" कहकर आँखें खोलते।

पिताजी हमें उपदेश देते—सर्व शक्तिमान परम पिता परमात्मा से हमारा कोई भी अपराध छिपा नहीं रह सकता। वे माता पिता से भी अधिक दयालु है। सच्चे हृदय से अपने अपराध के लिये उनसे क्षमा माँगने पर वे हमारे पापों को तुरन्त क्षमा कर देते हैं और हम पाप के दण्ड से बच सकते हैं।

गम्भीर हो प्रार्थना में मन लगाये रहने का यत्न करने पर भी चित्त प्राय: भटक जाता। कभी गली में गुल्ली-डण्डा खेलते लड़के दिखाई देने लगते, कभी चौके में घुइयाँ बनाती माताजी दिखाई देने लगतीं, कभी पड़ोस की छत पर गुड़िया का खेल खेलती लड़कियाँ। पिताजी ने यह भी उपदेश दिया था कि मन में पाप होने पर चित्त भगवान् की उपासना में नहीं लगता। हम मन को वश करने का यत्न करते रहते परन्तु जाने कब और कैसे भगवान् का ध्यान अंजली की अँगुलियों में से पारे की भाँति फिसल जाता।

अपने पापी मन को समझाते-समझाते विचार आया--मैं कौन-कौन पाप करता हूँ ? उस ग्यारह वर्ष की अवस्था में किसी भी पाप का रूप ध्यान में ठीक से न जँचता, जिन-जिन पापों के विषय में धर्मोपदेशों में ज़िक्र सुना था, उनमें से किसी का भी करना याद न आया। तब मन में एक क्षोभ-सा हुआ। कोई भी तो ऐसा पाप नहीं जिसके लिये सच्चे हृदय से क्षमा माँग भगवान् का प्यारा बन सकूँ। तब फिर

भगवान् मुझ पर अनुग्रह किस बात के लिये करेंगे ? कैसे मैं वाल्मीकि ऋषि की भाँति तपस्वी बन सकता हूँ ? भगवान् की दया और उनका प्रेम पाने के लिये, सच्चे हृदय से उनसे क्षमा माँगने के लिये, एक पाप करना आवश्यक हो गया। इसलिये उस दिन संध्या को स्कूल से लौटते समय पंसारी की दूकान पर खड़ी भीड़ में छिपकर एक नारियल का टुकड़ा चुरा लिया। अपनी गली के समीप बाजार में मुहल्ले की एक लड़की को देख कुचेष्टा के संकेत से गालियाँ दीं।

उस दिन साँझ को पिताजी के साथ बैठ संध्या करने के पश्चात् अपने किये पापों को याद कर सच्चे पश्चात्ताप से आँखों में आँसू भर, गद्गद् कंठ से भगवान् से प्रार्थना की—"मैं खल और कामी हूँ, मेरा हृदय पाप से पूर्ण है। हे परम पिता, मेरे अपराधों को क्षमाकर अपनी श्रद्धा और भक्ति का दान दीजिये!" अनुभव किया कि आज प्रार्थना करने से मुझे भी पिताजी के समान ही सन्तोष हुआ है। उस दिन भगवान् पर विश्वास कर अपने पाप क्षमा कराने का गर्व मन में ले रात भर गम्भीर बना रहा।

सुबह संध्या-प्रार्थना के बाद भोजन से पहले पिताजी की आज्ञा से माताजी हमें पढ़ने बैठा देतीं, मैं रात की गम्भीरता के कारण अपना बस्ता खोल, चुपचाप पुस्तक से पाठ याद कर रहा था। छोटी बहिन की दृष्टि बस्ते में छिपे नारियल के टुकड़े पर पड़ गई। नीरा ने नारियल का टुकड़ा निकाल लिया। इस टुकड़े के लिये नीरा और केवल में झगड़ा हो गया। माताजी के घटनास्थल पर पहुँचने पर प्रश्न उठा—आखिर यह गरी का टुकड़ा आया कहाँ से ?

अपने अपराध के लिये भगवान् से क्षमा माँग ही चुका था। वह अपराध परमपिता परमात्मा पिछली संध्या क्षमा कर ही चुके थे। हाथ जोड़ अपना अपराध स्वीकार कर ही रहा था कि पिताजी नीचे की बैठक से ऊपर आये।

गम्भीर चेहरे और क्रोधपूर्ण आँखों से उन्होंने मेरी चोरी का अपराध सुना। मेरे छोटे से गाल पर उनके लम्बे-चौड़े हाथ का एक थप्पड़ दाँयें से और दूसरा बाँये से पड़ा। दोनों कान सुन्न हो गये परन्तु फिर भी खूब ऊँचे स्वर में उनके बोलने के कारण सुन सका—मैं चोर बदमाश हूँ और मुहल्ले की लड़कियों से छेड़खानी करता हूँ, चोरी करता हूँ। छोटे भाई को उन्होंने नीचे से अपना मोटा बेत लाने की आज्ञा दी!

दोनों कानों पर हाथ रखे, आँखों से आँसू बहाते हुये, काँपती लातों से मैं भगवान् को गुहार रहा था—हे दयामय, कल कितने सच्चे और पश्चात्तापपूर्ण हृदय से मैं अपने पाप के लिये क्षमा माँग चुका हूँ। हे परमपिता, तुम मेरा अपराध क्षमा कर चुके हो। जल्दी आओ और अपने भक्त को बचाओ!

परन्तु भगवान् के पहुँचने से पहले ही पिताजी की धमकी से काँपता हुआ छोटा भाई नीचे से मोटा बेत लेकर आ पहुँचा। एक साथ दो अपराधों की सज़ा मिली। मैं प्रायः निष्प्राण हो फ़र्शपर बिछा दिया गया।

दिन भर रो-रो कर सूजी हुई आँखों से मैं बिसूरता रहा—भगवान् ने जब क्षमा कर दिया था तो पिताजी ने क्यों मारा? क्या भगवान् को पिताजी से मेरा अपराध क्षमा हो जाने की बाबत कहना याद नहीं रहा, या भगवान् ने मेरा अपराध क्षमा ही नहीं किया था? मैंने कितने निश्छल हृदय से भगवान् के सामने अपना अपराध स्वीकार कर क्षमा माँगी थी फिर वह अपराध क्षमा क्यों नहीं हुआ? और क्या भगवान् केवल पिताजी की ही बात मानते हैं, मेरी नहीं।

तब निश्चय हो गया कि पिटने के लिये ही भगवान ने हमें छोटा बनाया है।

१३

नमक हलाल

गलियारे, खेतों की मेंड़, पनघट, गाँव की गली जहाँ कहीं भी भदई निकल जाता, विनय से रसीली आँखों और मुस्कराहट से पाँय-लागन, रामजुहार और जयरामजी बखेरता जाता। गाँव के छोटे-छोटे रेंगते बच्चों से ले, लाठी टेक चलनेवाली बुढ़िया तक से भदई का सौख्य था। शील से वह ऊँची जात के सभी लोगों को मालिक-मालिकिन पुकारता। जो इस श्रेणी में न आते वे उसके भैया, दद्दा जीजी थे।

मथैयापुर और मथैयापुर की ज़िलेदारी में भदई का व्यक्तित्व दोहरा था। सबका भला और हंसोड़ भदई मथैयापुर की ज़मीन्दारी कचहरी का गुड़ैत (सिपाही) था। उसके अपने सरल, मिलनसार व्यक्तित्व के पीछे उसके पद का आतंक था। घास का भारी गट्ठर सिर पर उठाये बलई की पासिन के यदि भदई मेंड़ पर हाँफते देख पाये तो बोझ अपने सिर उठा, उसकी गोहरन तक पहुँचा दे। उसी साँझ जिलेदार साहब ज़मीन्दारी की सीर पर काम के लिये बेगार में बलई की पासिन को झोंटा पकड़ घसीट लाने का हुक्म देदें तो भदई रूखी आँखों से पासिन के सिर में एक धौंस जमा, सचमुच उसका झोंटा पकड़ उसे खेत में ला खड़ी करदे। उस समय पासिन के बिलखते बच्चों की चीख-पुकार भी भदई के कान में नहीं पड़ सकती।

भदई का बाप चेतू भी अपनी जवानी में रियासत का गुड़ैत रहा था। दो रुपया माहवार तनख्वाह और 'सरकार' से आठ बीघा की मुआफ़ी थी। 'सरकार' ही उसके सर्वेसर्वा थे। भदई का बड़ा भाई

जितई खेती-बारी में व्यस्त था। भदई को हल-बैल से काम न था। वह बापकी जगह ज़िलेदार की गढ़ी में गुड़ैती करने लगा। भौजाई के ताने सुन घर छोड़ वह ग़ी की चौपाल में ही बना रह पूरा सिपाही बन गया।

राजा साहब को भदई का यौवन के कुन्दन से दमकता शरीर और भक्ति के अनुराग से भीजी आंखें कुछ ऐसी रुच गईं कि उन्होंने उसे ज़िलेदार के थाने से महल की कचेहरी में बुला लिया। गर्व से माथा ऊँचा किये कन्धे पर लाठी धरे वह शरीर रक्षक के रूप में राजासाहब की अर्दली में बना रहता।

कचेहरी से उसकी तनखाह छः रुपया माहवार बँध गई। पट्टा बदलाई या वसूली पर चार-छः आने पट्टे पीछे मिल रहता। रियासत में इतनी तनखाह कभी किसी प्यादे को नहीं मिली थी परन्तु भदई जैसा सिपाही भी रियासत में कभी क्या हुआ होगा? उसके लिये माई बाप, धर्म-इमान, बस सरकार का हुक्म था। राजासाहब की शक्ति का अस्तित्व मथैयापुर के हलके में भदई के छरहरे कसरती बदन और ताँम्बे के तार से गाँठ-गाँठ बँधी लाठी के रूप में ही था। यों भदई हलके भर का गुलाम था परन्तु गुड़ैत के रूप में रियासत की सरकार की शक्ति का आतंक। ब्याह भदई का बारह बरस की आयु में ही होगया था और जवानी की ड्योढ़ी बाइस बरस पूरे होते-होते उसकी छबीली बारिन, डेढ़ बरस के कल्लू को छोड़ आँख मूँद गई। बप्पा और भौजाई के हज़ार ताने सुनकर भी भदई कल्लू को भौजाई के आँचल में सहेजने के लिये तैयार न हुआ। संसार में अपने एकमात्र 'अपने' को अपने कलेजे के टुकड़े को वह किसी दूसरे की दया पर कैसे छोड़ देता? कल्लू बाप के वात्सल्य और ज़मींदार के विशाल चौके के टुकड़ों पर पलता रहा।

भदई मुँहअँधेरे उठ धरतीमाता के चरन छू, बदन में तेल लगा कसरत करता। जब से उसने रसौली रियासत के पहलवान मिर्जा को अखाड़े में धोबीपाट लगा, पछाड़ दिया था, राजा साहब ने प्रसन्न हो

उसे कोठी से आधा सेर भैंस का दूध बाँध दिया था। गाँव के ब्राह्मण ठाकुरों के पट्ठे भदई के पुष्ट, चिक्कण, दमकते शरीर को ईर्षा से देखते। उन्हें न कसरत के लिये अवसर था न आवश्यकता। खेती के श्रम से उनके शरीर हारे और टूटे रहते। जिन्हें पेट भर भोजन कठिनता से मिल पाये, भोजन पचाने के लिये कसरत का सवाल उनके लिये कैसा? वे ताना देते—'भइय्या, जुलाई के हारे बैल साँड़ों के मुकाबिले क्या ठहरेंगे?' इस ईर्षा का उत्तर भदई देता—'जिसका खाते हैं, उसके लिये हथेली पर सिर रखे भी तो हमी घूमते हैं।' उसका लाल लंगोट, बँधी हुई लाठी और डण्ड पेलने के गुम्मे तेल से भीजे रहते। इन्हीं का उसे शौक था।

महल की जवान चाकरनियाँ सटी हुई मिर्जई में उसके उभरे चौड़े सीने और धोती के फेंटे में कसी जंघाओं की झलक से गुदगुदी अनुभव कर, उसकी उपेक्षा से कुण्ठित हो, तिर्छी निगाहों से ओठ बिचका कुछ कह जातीं। भले घर की बहुओं की आँखें भी उसे देख सिरा जातीं। वह प्रयोजन-निश्प्रयोजन उसे किसी बहाने 'भइया' कहकर तृप्ति अनुभव कर लेतीं। लेकिन भदई का ध्यान उस ओर था ही नहीं। लँगोट का सच्चा वह तृप्ति अनुभव करता था अपने संचित, सुरक्षित यौवन की शक्ति के मद में। बोली ठोली और टुचकारी का उत्तर वह गाली और उपेक्षा से देता। उसे अनुराग था केवल 'सरकार' के हुक्म से।

× × ×

फागुन बीत गया परन्तु होली का मद अभी हवा में शेष था। पृथ्वी पर बावली हवा की ठेलमठेल से क्षुब्ध हो, अधर में लटके भूसे और धूल के कण क्षितिज की अमराइयों की ओट से छनती सूर्य की किरणों में सुनहले हो रहे थे। मड़ाई और ओसाई के श्रम से चूर किसान सफलता की खुमारी में थकावट अनुभव न कर अपने श्रम का फल बटोरने में लगे थे।

राजासाहब-मथैयापुर कार में लखनऊ से लौट रहे थे। दुरई तक

जरनैली सड़क है और आगे पाँच मील चलना, कमछा की राह कच्चे में होकर रियासत की कोठी तक जाना होता है।

राजा साहब की कार कमछा के खलिहानों के पड़ोस में गुजर रही थी। ढोलक की गमक के साथ नारी-कण्ठ का महीन स्वर सुन उन्होंने गाड़ी की खिड़की के काँच से झाँका। कुछ काँच पर जमी धूल और कुछ गाड़ी की रफ्तार, स्पष्ट कुछ दिखाई नहीं दिया। इमली के पेड़ के नीचे गोल बाँधकर खड़े लोगों की भीड़ में से एक गोरी-गोरी सी, छरहरी औरत की झलक दिखाई दी और गाड़ी निकल गई।

ड्राइवर ने घूमकर कहा—"हुजूर यही हैं वो बेड़िनी····नसिया !'

जल्दी में राजा साहब जो कुछ देख पाये, उससे उनकी आँखों में चमक आगई। मुस्कराहट दबाकर बोले—'चीज़ तो बुरी नहीं।'

'इसमें क्या शक ? हुजूर की परख का क्या कहना !' विनय की मुस्कराहट से झुककर मैनेजर ने समर्थन किया।

आँखें सड़क की ओर कर ड्राइवर कहता गया—"ग़रीबपरवर खादिम ने तो अर्ज़ किया ही था। लेकिन देखे बिना अन्दाज़ मुश्किल था। सूरत क्या है, चेहरे का रंग जैसे सोना-चम्पा ! सरकार तसवीर समझिये ! और गला है, जैसे मस्ती में आई कोयल ! ग़रीबपरवर बीस की भी नहीं होगी। ऐसी कच्ची, जैसे लखनऊ की ककड़ी की बतिया। इमान की कसम सरकार, जैसे बहिश्त से परी उतर आई हो पर शोख भी ऐसी है कि बात-बात में अँगूठा दिखाती है।"

राजा साहब की दृष्टि आकर्षित करने के लिये, सीट पर कुछ आगे झुक मैनेजर साहब बोले—'ग़रीबपरवर शहर के रंग तो हुज़ूर की बदौलत रोज़ ही देखते हैं। उन पिंजरे की मैनाओं के चोंचले तो रोज़ ही सुनते हैं आज यह जंगल की कुँवरी फुदकती हुई हुज़ूर के कदमों में हाज़िर हुई है तो इसे भी देखा जाय, हर्ज़ क्या है ? ग़रीबपरवर दिल्लगी रहेगी।'

ज़िलेदार की गढ़ी के समीप से जाती हुई मोटर पल भर को

थम गई। भोंपू की आवाज़ सुन, ज़िलेदार ज़मीन तक झुक सलाम करते हुये दौड़े चले आ रहे थे। आगे बढ़ मैनेजर साहब ने उनसे बात की। ज़िलेदार ने सिर झुका राजा साहब के सुन सकने लायक स्वर में विश्वास दिलाया—"हुज़ूर के गुलाम हैं। अन्नदाता सब ठीक हो जायगा।"

अगली सांझ कोठी पर नसिया का मुजरा हुआ। गैस की रोशनी थी। नसिया भरसक बन सँवर कर आई थी। पीली बुंदकी का लाल लंहगा, गोटा टंकी काली ओढ़नी और दो आधे कटे नारियल से दबाये, गैस के उजाले में काली दिखाई पड़ती हरी मखमली, अंगिया।

नसिया के मर्द ने घुटने के नीचे दबे ढोलक पर थाप दी। नसिया आरसी पहने अंगूठे और तर्जनी से वक्षस्थल पर आंचल सीधा कर ठुमकने लगी। ढोलक की गति द्रुत होने लगी और उसके साथ नसिया के चंचल पाँव। वह चकही सी नाचने लगी, नाच में छतरी की भाँति फैल गये लहंगे की छाया में टखनों पर बँधे घुंघरू और पायजेबों के ऊपर, खरादे हुये पाये सी सुडौल गोरी पिंडलियाँ थिरक रही थीं। द्रुत गति से उसके घूमजाने से ओढ़नी में हवा भर सीने का उभार उघड़ आता। उसकी गोरी-गोरी बाहें और काली वेणी सफ़ेद और काले सांपों की भाँति लहरा रही थी। राजासाहब की बग़ल में बैठे मैनेजर उचक-उचक कर उनके कान में कुछ कह देते। राजा साहब के नेत्र कभी फैल जाते और कभी अधमुंदे से रह जाते। चेहरे पर एक दबी सी मुस्कराहट आकर विलीन हो जाती।

नसिया सांस लेने को पल भर थमी। मैनेजर साहब कुछ कह पायें इससे पहले ही नसिया दूसरे नाच में ठुमकने लगी। भाव बता वह गाने लगी—चितै दे रे हमरी ओर, करक मिटजै रे·······हायरे मोरे सइयां·······नसिया जो कुछ गारही थी उसमें कला का परिश्कार न था मन्द्र और कोमल का उसे ज्ञान न था। वह अन्तरा और स्थायी का भेद भी न जानती थी। वह केवल अनावृत वासना का संकेत था। वह सीधी

सादी गाँव की बोली में ग्राम्यवधू की उत्तेजक कामना की बात कह रही थी जो पुरुष में नर को पुकारती है, उसके लिये छटपटाती है। नसिया का भाव दर्शन भी परिश्कृत संकेत मात्र नहीं, यथार्थ था। अपनी नग्नता के कारण वह प्रबल और अदम्य हो रहा था। समीप बैठे मैनेजर और पीठ पीछे खड़े ड्राइवर की वाह-वाह में योग देने के लिये राजासाहब ने मुस्कराकर एक अशर्फ़ी मांग कर उन्होंने नसिया को देने का हुक्म दिया।

नसिया अपने मर्द और देवर के साथ चलने को हुई। मैनेजर साहब अलग अकेले में राजासाहब से बात कर रहे थे। ड्राइवर को पुकार उन्होंने कुछ समझाया। ड्राइवर लपक कर नसिया और उसके मर्द के पास आकर बोला—'कहाँ है तुम्हारा डेरा, कमछा में? अब इतनी अबेर से इतनी दूर क्या जाओगे? कोस डेढ़ से कम क्या होगा? उजाड़ में अकेले जाओगे? यहीं पड़े रहो। चटाई चदरा मिल जायगा।'

'नहीं, अन्नदाता, हुकुम हो, जाँयगे'— नसिया के मर्द मनसा ने कहा—'डेरे पर दूसरे लोग राह देखते होंगे।'

ड्राइवर ने फिर समझाया—'अरे उजाड़ बियाबान है। इस हल्के के लोग बड़े सरकश-बदमाश हैं। कहीं कुछ और आफ़त सिर लो! अंटी में सोना लेकर ऐसे रात-बिरात नहीं चला जाता।' अपनी दो हाथ की लाठी छू मनसा ने उत्तर दिया—'अरे मालिक की दुआ से देस-बिदेस सब ऐसे ही फिरते हैं।'

ड्राइवर के बहुत समझाने से भी मनसा रात कोठी पर बिता देने के लिये तैयार नहीं हुआ। दो-चार अशर्फ़ी और पा जाने की आशा पर भी नहीं। बल्कि आशंका से उसने, मुँह बाये खड़े अपने भाई को धमका कर कहा—'चलता है कि नहीं, मुँह बाये क्या देख रहा है?' हाथ में थमी लठिया से राह दिखा उसने नसिया को भी डांट दिया चलती है री!'

कल्लू नसिया का नाच देखते-देखते नींद में लुढक गया था। भदई उसे गोद में उठा लाया। अपनी कोठरी की सांकल चढा सामने पुआल की चटाई पर उसने लड़के को कथरी उढा सुला दिया। दो पहर रात बीत चुकी थी। अष्टमी का चन्द्रमा पश्चिम ओर की अमराइयों पर झुक गया था। पछुवा बयार बाधा रहित मैदानों को पार कर, नंगे खेतों में इठलाती, पेड़ों से मरमराहट और सूखी झाड़ियों की सरसराहट की गूँज लिये बही चली आ रही थी और बही चली जा रही थी। रात भीज जाने से हवा में कनक आगई थी परन्तु भदई चटाई पर उघारे बदन बैठा नींद की तैयारी में दिन की अन्तिम सुरती हथेली पर मल रहा था कि होंठ में दबाकर लेट जाय, छीजती चाँदनी में पीली चटाई पर उसके शरीर की कृष्ण रेखायें पीतल की पटिया पर बनी ताँम्बे की मूर्ति सी जान पड़ रही थीं।

गप्पू कहार का बोल सुनाई दिया—'भइया भदई हो! मनीजर साहब कोठी पै बुलाइन हैं!'

अप्रत्याशित बुलाहट की बात सुन भदई ने समझ पाने के लिये दृष्टि उसकी ओर उठा कहा—'हूँ...लेओ, सुरती लेओ।' सँवारी हुई सुरती की चुटकी हथेली पर बढा शेष अपने निचले होंठ में दबा ली। अपना लाल लँगोट गले में लपेट, चदरा कंधे पर रख, लाठी हाथ में ले भदई गप्पू के साथ कोठी की ओर चल दिया।

मैनेजर साहब कोठी के पूरब की ओर फैली छाँव में खड़े ड्राइवर से बात कर रहे थे। उनसे कुछ दूर कटहल की चाँदनी में चमकती पत्तियों की छाँव में बखतावर और जगन बदन पर चदरा लपेटे कोख में लाठी की टेक लिये खड़े थे। चार कदम से ही भदई ने झुककर मैनेजर साहब को सलाम किया।

आत्मीयता के स्वर में मैनेजर साहब ने सलाम स्वीकार किया—'कहो भदई, सोवन जात रहे का? हियाँ आओ!····देखो····कितने

सरकस लोग हैं ?' परेशानी के भाव से उन्होंने गाली दे कहा और समर्थन के लिये ड्राइवर को सम्बोधन किया—'क्यों रहमत खां ?'

'अरे हुजूर क्या अर्ज़ करें ?'—ड्राइवर ने उत्तर दिया—'इतना समझाया पर जैसे 'सरकार' को कुछ गिनते ही नहीं। सरकार खुद ही तो मुँह लगाये हैं। अमा, तुम टके-टके बिकाती हो ; तुहें मिजाज किस बात का ? सरकार ने असर्फी दिला दी सो दिमाग़ बिगड़ गया। कहते, रात भर ठहरो यहाँ। तब सुबह पसेरी भर अनाज दिला देते। कम जात लोग ऐसे ही ठीक रहते हैं।'

शरीर को ढीला कर मैनेजर साहब ने फिर भदई की ओर ध्यान दिया—'भइया भदई, 'सरकार' को तुम पर बहुत भरोसा है। कितना मानते हैं, क्यों ?'—मैनेजर ने फिर ड्राइवर को समर्थन के लिये संकेत किया। उसने हामी भरी—'और क्या ?' मैनेजर साहब कहते गये—'लोग ऐसी सरकसी करने लगें तो रियासत दो दिन नहीं टिक सकती। अरे हाँ, कल रियाया ही कहने लगे, हम 'सरकार' को कुछ गिनते ही नहीं तो यह रियासत और अमला कहाँ रह जायँ ?·······कहो !' उन्होंने ठोड़ी उचका भदई से पूछा।

'जो हुकुम होय हुजूर, सरकार का नमक खाते है'—भदई ने निशंक उत्तर दिया।

मैनेजर साहब एक कदम और समीप सरक आये। 'रहमत भी जा रहे हैं, जगन, बख़्तावर और गप्पू हैं। जैसे हो·······' गाली दे उन्होंने कहा—'····साली को उठा लाओ ! फिर हम देख लेंगे ! समझे·······?' माथा झुका भदई ने विश्वास दिलाया—'धर्मौतार, जो हुकुम !'

चन्द्रमा कुछ और झुक गया परन्तु अभी चाँदनी थी। चारों आदमी, लाठियां कंधे पर रखे ड्राइवर के साथ तेज चाल से चल दिये। चाल की तेज़ी से दम न फूले, इसलिये धीमे होने के लिये जगन बात

करने लगा—'····अरे ससुरन का बिछाय देब ! त्योरस के साल जब कमछा के बिनै ठाकुर की ऊख की पट्टी मथुरिया के नाम बदली गई, ठाकुर बहुत बिगड़े। बेचारे मथुरिया दो सौ रुपया नजराना सरकार का दिये रहे। जिलेदार साहब का खुश किहेन। दो रुपिया हमहूँ पाये। बिनै ठाकुर दस बरस ते पट्टी का जोतत रहे। दो फसल और कर लें, पुस्तैनी हो जाय। दोनों भइया कहन लगे—खेत नहीं छोड़ेंगे चाहे खून बह जाय ! जबरन हल लेके खेत में जा पहुँचे। जिलादार साहब हमका कहिन—भइया जगन जाके, देखो ! हम बिसना, बिन्धे और गप्पू का ले गये। ठाकुर हमें गरियान लागे। हम कहेन—दद्दा हमहू दो रोटी खाइत है, अस न बकौ !·······गाली का पुट दे उसने कहा—बहिन-बिटिया गरियान लागे। दूनौ हाथन ते लट्ठ लैके हम पिल परेन ! सबका बिछाइ के धर दीन। लागे पिल्ला से चिचियान ! उनके भइया राम बोल गये ! हम कहिन·······हम रियासत के गुड़ैत····!

"हवल्दार साहब हमका हथकड़ी दे के थाना माँ लै गये। हम कही—अब जो होय ! मालिक का नमक खावा है तो उनके हुकुम से जो होय ! 'सरकार' का पर्ताप है कि तीसरे दिन—मूंछ छू उसने कहा—घर चले आये। बिनै ठाकुर·······का सब जोर लगाते रहे। अब चाहे सरकार दारोगा साहब को पाँच-सौ पूजे हों या हजार !" अपनी जान का भारी मूल्य चुकाये जाने के अभिमान में उसकी गर्दन ऊँची हो गई। जगन की बात समाप्त हुई तो ड्राइवर ने किस्सा छेड़ा— "लखनऊ में सड़क पर मज़े-मज़े जा रहे थे। साला सिपाही कहने लगा, बायें चलो ! हमने कहा—चुप बे ! साला बकने लगा। गाड़ी से उतर वो एक झाँपड़ दिया साले को ! हवल्दार साहब तारे गिनने लगे !"

वे लोग कमछा के गोयँड़ खेतों में पहुँचे तो गाँव के कुत्ते भोंकने

लगे। जगन ने कुत्तों को गाली दी। बख्तावर ने समझाया—'बयार इधर से है। मानस-गंध पा कुत्ते चौंक रहे हैं। उधर उत्तर पीपल के परे से होकर निकल चलो!'

नाच से पहले राजा साहब के लिये विलायती की बोतल खुली थी। राजा साहब ड्राइवर को मानते थे सो एक गिलसिया उसे भी भिजवा दी। चस्का लगा तो ड्राइवर ऊपर से देसी और चढ़ा गया। वह नशे के जोम में था। बोला—'क्यों निकल चलें उधर से? क्या दबैल हैं किसी के? सीधे चलो जी, देखें कौन.......आता है। एक हाथ में साले का भेजा निकाल दूँ!'

'अरे मालिक झमेले से का फायदा?'—खुशामद से भदई ने कहा और वे लोग पीपल का चक्कर दे निकल गये।

जोहड़ के समीप बेड़ियों के डेरे की सिरकियाँ चाँद छिप जाने के पश्चात् अस्पष्ट सी दिखाई पड़ रही थीं। बख्तावर के कहने से वे लोग चक्कर दे उत्तर पूरब से सिरकियों की ओर बढ़े कि कुत्ते मानस-गंध पा चौंकें नहीं। आहट बचाने के लिये यह लोग पंजों पर बोझ दे चल रहे थे। बख्तावर ने ड्राइवर को भी जूते उतार हाथ में ले लेने के लिये सलाह दी। उसने गाली दे कहा......."डरते हैं क्या?"

सिरकियाँ अभी कुछ कदम दूर थीं कि एक कुत्ता गुर्रा उठा। उस गुर्राहट के साथ ही कुत्ते जोर से भौंकने लगे। आवाज सुनाई दी—'को है?'—सिरकियों के नीचे दिखाई दिया कि एक आदमी झपटकर लेटे से उठ बैठा। भदई के कान में बख्तावर ने धीरे से कहा—'जाग गये.......झपट के लो!'

जगन कुछ झिजका परन्तु भदई और बख्तावर को झपटते देख रुका नहीं। ड्राइवर जूते की उलझन से ज़रा पीछे रह गाली देता हुआ साथ-साथ चला।

मनसा लाठी ले खड़ा हो गया और चिल्लाने लगा—'ओ खित्तू, उठ ! चोर-चोर-चोर !' भदई और बख्तावर ने मनसा और खित्तू को गिरा दिया होता परन्तु उनके कुत्ते आगे आकर उलझ गये। बड़े से काले कुत्ते ने भदई की पिंडली में दाँत गड़ा दिये। बख्तावर की लाठी से कमर टूट जाने पर चिल्लाने के लिये उसका मुँह खुला तो टाँग छूटी। लाठियाँ कड़ाकड़ बजने लगीं। स्त्रियों के कण्ठ की आर्त चिल्लाहट भी सुनाई पड़ रही थी। नसिया और उसकी ननद भी बांस ले लड़ने को तैयार हो गईं। चिल्लाती भी जाती थीं—'हाय रे ! मार डाला रे !' मनसा का बूढ़ा बाप कुल्हाड़ी ले आगे बढ़ आया।

भदई उछल-उछल कर पैतरे से लाठी चला रहा था। पहले मनसा और फिर खित्तू गिर पड़े। बूढ़ा दोनों हाथों से सिर थाम बैठ गया। नसिया की पीठ पर एक लाठी जमा ड्राइवर ने कहा—'यही है साली पकड़ लो·······को !'

भदई ने नसिया को गर्दन से पकड़ उसके हाथ से बाँस छीन फेंक दिया। वह चिल्लाने लगी। ड्राइवर ने उसका आँचल उसके मुँह में ठूँस दिया। भदई उसे कंधे पर उठा ले चला। वह छटपटा कर हाथ-पाँव चलाती भदई का सिर और गर्दन नोचती रही। उसकी पिंडली में लगे कुत्ते के दांत से लगातार खून जा रहा था परन्तु वह रुका नहीं। उसके पीछे-पीछे, गाली बक नसिया को चुप रहने के लिये धमकाता हुआ ड्राइवर चला आ रहा था। बख्तावर के कंधेपर भी भीतरी गहरी चोट बैठी थी। गप्पू और जगन के यों ही मामूली से खोंच लगी थी। वे बख्तावर को सहारा दे लिये चल रहे थे।

रात का तीसरा पहर बीत चाँद छिप चुका था। चाँदनी की शीतलता का स्थान अंधकार की भयंकरता ने ले लिया। कोठी के और भी घने अंधकार में केवल मैनेजर साहब के सुलगते सिगरेट का अँगारा दिखाई दे रहा था। भदई ने अधमरी सी, शिथिल क्लान्त नसिया को

मैनेजर साहब के सामने रख, अपने माथे का पसीना फ़र्श पर गिरा दिया। मैनेजर साहब के पुकारने से लालटैन आई। नसिया के मुँह का कपड़ा निकाल उसे भीतर कमरे में पहुँचा दिया गया।

नाच के बाद नसिया को न पा राजासाहब का मन असफलता के अपमान की अनुभूति से चुटिया गया था। व्यर्थता और उदासी अनुभव होने लगी। ग्लानि दूर करने के लिये थोड़ी और लेने की सलाह मैनेजर ने दी। उसी जोम में राजासाहब ने गाली दे कर कहा था—'........को पकड़ लेओ।'

नसिया के आनेतक वे आवेश और उन्माद में सोफ़े से कुर्सी और कुर्सी से पलंग पर उछलते रहे। जिस समय नुची-खुची मसली नसिया उनके सामने पेश की गई, आवेश का ज्वार फिर ग्लानि की दलदल में परिणित हो चुका था। राजा साहब ने गाली देकर उससे पूछा—'बड़ा मिजाज है ?'

उस अवस्था में भी बदहवास नसिया ने, गाली का उत्तर गाली से दे, छूनेवाले का कलेजा चीर, खून पी जाने की धमकी दी। राजा साहब के क्रोध की निरतेज होती अग्निपर पैट्रोल पड़ गया। 'अभी इस........ हरामजादी को हमारे सामने कुत्तों से........! बुलाओ साले जगन को! रहमत को भी बुलाओ!........अभी यहीं हमारे सामने!........ऐसे मिजाज हैं........'—वे चिल्लाकर दाँत किटकिटाने लगे।

जगन और रहमान के आने पर राजा साहब ने नसिया को मज़ा चखाने के लिये दोनों को एक एक बोतल देसी शराब देने का हुकुम दिया। हाँफती हुई नसिया को दोनों बाहों से थाम वे खींच ले गये।

× × ×

जिस समय खित्त और उसका बूढ़ा बाप रोते हुये, उनके आदमी को ज़ख्मी कर उसकी औरत भगा ले जाने की दुहाई देने, बिजतिया

के थाने में पहुँचे, भाग्य से सर्कल इंस्पेक्टर साहब अकस्मात-निरीक्षण (Surprise Visit) के लिये, तड़के ही आ विराजमान हुये थे।

हवल्दार साहब ने फारियादियों को डपट कर थाने के बाहर प्रतीक्षा करने के लिये कह दिया था। उन्हें परिस्थिति से परिचय था। रियासत के लिये लिहाज़ था। सर्कल-साहब से छुट्टी पा दारोगा साहब जो मुनासिब समझते, करते। सर्कल साहब ने खबर पा, फरियादियों को भीतर बुलाये जाने का हुक्म दिया। संगीन मामले में हवल्दार की उपेक्षा ने उनके मनमें सन्देह उत्पन्न किया। मामले की तहकीकात के लिये वे दारोगा के साथ स्वयम घटनास्थल पर गये। इसके बाद भोजन और विश्राम के लिये थाने पर लौटे बिना, सीधे ज़मीन्दार साहब की कोठी पर पहुँचे।

जिस समय सर्कल साहब घटनास्थल पर तहकीकात कर रहे थे, हल्के में उनके अकस्मात पधार जाने का समाचार राजा साहब की कोठी पर पहुँच गया। कोठी पर नसिया का कुछ पता न चला। तिस पर भी सर्कल साहब ने भदई और बख्तावर को उनकी चोटों के प्रमाण के आधार पर, उनके घटना से सम्बन्धित होने के सन्देह में, हिरासत में ले लिया। जगन और नसिया दोनों का ही कुछ पता न चला।

मनसा को चोट गहरी लगी थी। वह उसी दिन संध्या तक दम तोड़ गया। सर्कल-साहब के हुक्म से उसकी लाश जिला हस्पताल में सिविलसर्जन के निरीक्षण के लिये भेज दी गई। आगे तहकीकात और रिपोर्ट की हिदायत कर सर्कल साहब दौरे पर चल दिये।

दो महीने तक नसिया की खोज होती रही। अदालत ने पुलिस को खोज के लिये अवसर (Remand) दिया। भदई और बख्तावर जिला जेल की हवालात में सड़ते रहे। मनसा के बूढ़े बाप, भाई और ननद को हर तीसरे दिन थाने में हाज़िर होने का हुक्म हो जाता। उनका आदमी मारा गया, घरकी औरत भाग गई सो तो हुआ लेकिन

हर तीसरे दिन थाने में दिन भर की हाज़री से वे रोज़ी से भी गये। अपने ऊपर हुये अत्याचार का बदला ले पाने की प्रतिहिंसा के बदले वे अपनी जान बचा पाने के लिये व्याकुल होने लगे।

दारोगा साहब प्रायः कोठी पर आते-जाते और उनकी खातिर होती। मामले के बारे में राजासाहब को चिन्तित देख वे आश्वासन देते, इंशा-अल्ला सब ठीक हो जायगा। आप का नमक ग़ुलाम की नस-नस में भीज रहा है, आपको फ़िक्र किस बात की ?'

दो मास से अधिक समय खोज-पड़ताल के लिये देना अदालत ने स्वीकार न किया। आखिर मामला अदालत में पेश हुआ तो इस रूप में:—

मरहूम मनसा की औरत मफ़रूर नसिया रियासत के नौकर जगन से फँसी थी। मनसा औरत पर कड़ी चौकसी रखता था। जिस रात राजा साहब के नौकरों ने नसिया का नाच कराया, जगन अपने दोस्तों को ले, रात के तीसरे पहर नसिया को जबरन लिवा लाने के लिये गया। तरफ़ैन में मार-पीट हुई और नसिया जगन के साथ भाग गई।

अभियुक्तों के लिये राजा साहब की प्रजापालकता के कारण सफ़ाई के वकील खड़े हुये। मनसा के बाप और भाई के पास वकील खड़ा करने के लिये रक़म और हौसला न था। वे किसी तरह रोज़-रोज़ के सम्मनों से जान बचाना चाहते थे। वे अदालत में -'हाँ हुज़ूर'— कह चुप होगये।

अभियुक्तों को पहचानने का अवसर आया तो दूसरे लोगों में मिलाकर खड़े किये गये बख्तावर को फरियादी पहचान नहीं पाये। भदई के लिये अपने जगजाने, सुडौल डील और पिंडली में लगे कुत्ते के दाँत ने उस पर अपराध में भाग लेने की मोहर लगा दी।

सिविल सर्जन साहब की रिपोर्ट थी कि मनसा की मृत्यु लाठियों

की चोट से ही हुई थी। जज साहब की दृष्टि में आक्रमणकारी भयंकर अत्याचारी और आततायी प्रमाणित हुये, जो कत्ल करके दूसरे आदमी की औरत को भगाने के लिये गये थे। फ़रार होगये अभियुक्त जगन के अपराध का दण्ड भी शायद उन्होंने गिरफ्तार होजाने वाले अपराधियों को ही देना उचित समझा। जज साहब को असंतोष था कि पुलिस ने गवाही पहुंचाने और खोज में उतनी तत्परता से काम नहीं लिया जितना कि ऐसे संगीन मामले में उचित था परन्तु अपराध प्रमाणित होजाने में सन्देह न था। सन्देह रह गया था केवल बख्तावर के व्यक्तित्व के विषय में, जिसे फरियादी गवाह पहचान नहीं पाये। इस सन्देह की छुरी ने बख्तावर के गले में पड़े न्याय की फाँसी के फन्दे को काट दिया। वह सर्वथा मुक्त होगया। भदई के लिये केवल एक ही दण्ड था—फाँसी !

× × ×

भदई जिला जेल की फाँसी की कोठरी में बन्द था। एक दिन मैनेजर साहब उसे दर्शन देने आये। भदई की प्राण रक्षा के लिये राजा साहब की चिन्ता का आश्वासन दिलाया और विश्वास दिलाया—हज़ार लाख जो भी खर्च होजाय हाई कोर्ट में मुकद्दमा लड़, उसे छुड़ाने में कसर न छोड़ी जायगी।

भदई जेल की रूखी-सूखी, कच्ची-जली खाकर भी अपनी कसरत पूरी कर लेता और दिनभर राम नाम जपता और राम नाम के गीत गाता। उसके मन में पश्चात्ताप की कलख न थी। उसने कौन पाप किया था जिसके लिये दुखी होता ? पराई औरत की ओर कभी बदनिगाह नहीं की। पराये सोने को सदा मिट्टी समझा। मालिक का नमक खाया तो उसे हलाल किया। दुनिया नहीं देखती तो न देखे, रामजी तो सब देखते हैं ! उसे चिन्ता थी केवल अपने बिन-मां के बेटे की। वह क्या और कैसे खाता, ओढ़ता होगा ? परन्तु विश्वास भी था—रामजी

सब देखते हैं। पत्थर में बन्द जीव की भी जो चिन्ता करते हैं ; वे क्या अपने सेवक के बेटे की सुध न लेंगे ?

सेशनजज ने फैसला लिखने में कुछ ऐसा ज़ोर भर दिया था कि हाईकोर्ट में भदई की ओर से की गई प्रार्थना (अपील) उसके अपराध की गुरुता के कारण ठुकरा दी गई।

× × ×

जेलर ने भदई को समाचार दिया—'तुम्हारी अपील मंजूर नहीं हुई।'—'जो रामजी की इच्छा'—उसने उत्तर दिया।

उससे पूछा गया—'किसी को मिलना चाहते हो ?' उसने अपने पुत्र को देखने की इच्छा प्रकट की।

स्तब्ध और त्रस्त बालक को सींखचों में बन्द पिता के सन्मुख लाकर खड़ा कर दिया गया। वह पिता के वात्सल्य मय हाथों के स्पर्श से दूर था परन्तु पिता की दृष्टि बालक के उगते कोमल अंगों का स्पर्श कर रही थी।

कल्लू रो पड़ा। भदई की आँखों से भी आँसू टपक पड़े। अपने को सम्भालकर उसने कहा—'लल्लू रोते नहीं.......! मर्द बच्चे कहीं रोते हैं.......? जियो बेटा.......! राजा साहब का हाथ तुम्हारे सिर पर है। रामजी उन्हें चिरंजीव करें। बेटा, राजा साहब के चरणों में रहना। जिसका खाओ, उसका हलाल करना ! यही सब से बड़ा धर्म है, मालिक को माने, नमक हलाल करे ! जाओ बेटा.......सुखी रहो !

१४

पुनिया की होली

पुनिया डाकखाने के बड़े बाबूजी के यहाँ बच्चा खिलाने पर है। सुबह मुँह-अँधेरे जा वह नाश्ता तैयार करने में मदद करती है। साहब को दफ़्तर जल्दी जाना होता है। कहने को दस बज जाते हैं, पर पुराने ज़माने के नौ ही समझिये ! और फिर जाड़े के दिन ! रात साढ़े आठ नौ से पहले मुन्ना सोता नहीं; उससे पहले वह घर कैसे लौटे ?

दिन में एक-डेढ़ घण्टे की छुट्टी उसे बहूजी देती हैं कि अपने घर रोटी सेंक, बच्चों को खिला-पिला आये। डेढ़ के बजाय वह तीन, कभी चार घण्टे लगा जैसे-तैसे दिन का काम सकेल पाती है। तब मुँह में चुटकी भर तम्बाकू दबाये, गली-मुहल्ले के लोगों से बतियाती, धीरे-धीरे वह लौटती है। बहूजी नाराज़ हो जाती हैं। रोज़ ही चुड़ैल को निकाल देने की धमकी देती हैं। परन्तु पुनिया जानती है, यह सब ऐसे ही चलता है। न बहूजी लड़के को सँभाल पायँगी, न उसे निकाल सकेंगी। वह कुछ मुँह-लगी भी है। बड़े आदमियों की सेवा करना उसके यहाँ का पुश्तैनी पेशा है। बात करने का सलीक़ा है। बड़े आदमियों की रग पहिचानती है। मुन्नू को वह पल भर को छोड़ देगी। वह दौड़ कर माँ से धमा-चौकड़ी करने लगेगा। बहूजी डाँटेंगी—'तू लड़के को एक मिनट नहीं सँभाल सकती। मर गई मुझे दो मिनट आराम नहीं करने देगी। यह धोबी की धुलाई पहाड़-सी पड़ी है, इसे कौन सहेजेगा ?'

आँखें फैला, पतली कमर को ज़रा हिला, पुनिया कहेगी—'हाय-हाय, कैसी हैं, पहर भर बाहर खेल लड़का पल भर को पास आया कि लगीं

डाँटने उसे ! जरा सिर पर हाथ नहीं फेर देंगी। बच्चे का जी छोटा हो जाता है ; इन्हें तो अपने काम से ही फुर्सत नहीं।' धोबी की धुलाई के सफ़ेद टीलों के बीच बैठी बहूजी मुन्ना की धमाचौकड़ी पर रीझने लगीं और पुनिया आधे घण्टे को फिर ग़ायब !

बहूजी ने फिर निकाल बाहर करने की धमकी दी और दिखाने को, पुनिया के रंग उड़ गये। फ्राक मुन्ना के सामने डाल, आँखें घुमा, इतरा कर बोली—'मुन्ना कह दो, हम नहीं पहिनेंगे यह सब पुराने कपड़े ! घर में रोज सैकड़ों ख़र्च हो जायँगे। एक बच्चा है, उसके लिये कपड़े नहीं !' और जब बहुत तनातनी हो जायगी, तो वह बहूजी की आड़ कर कह देगी—'तो क्या है, निकाल दो ! भूखे-बिलखते बच्चों को यहीं डाल जाऊँगी, मेरा क्या है ?' हमउम्र है न, इसीसे गली-मुहल्ले की रहस-वार्त्ता समीप बैठ, दबी जुबान में करती है और दूर के सहेलपने का दावा भी है।

रंग साँवला है ज़रूर, पर चेहरे पर चिकनाई है। बहूजी मौक़े-बेमौक़े उसके मैले रहने पर फटकार कर अपनी धुली हुई धोती, पेटीकोट और जम्पर दे देती हैं। तब अपने मुहल्ले में लौटती समय कई मस-खरियाँ, बोली-ठोली और टुचकारे उसे सुनने पड़ते हैं। किसी पर आँखें दिखाती, किसी पर ओठ दबाती, बल खाती वह घर पहुँचती है ।

घर क्या ? एक कोठरी है। कोठरी भी ढङ्ग की नहीं, जैसे घरौंदा हो। जैसे घर को झाड़-बुहार कर कूड़ा बाहर फेंक दिया जाता है, वैसे ही सम्पन्न नागरिक समाज की झाड़न-बुहारन भी मुहल्लों और शहरों के बाहर फेंक दी जाती है। इन्हें स्लम्स कहते हैं। इन स्लम्स में रहनेवाले भी सभ्य मनुष्य समाज की दृष्टि में फल से उतार दिये गये छिलके की भाँति बेक़द्र होते हैं। अपनी इस कोठरी तक पहुँचते-पहुँचते पुनिया की सरसता और मुस्कराहट समाप्त हो जाती है। उसकी छः बरस की लड़की ''ल से भरी जटायें फैलाये, कन्धों पर एक बेबटन का झँगला

लटकाये उसे देखते ही पुकार बैठती है—'अम्मा भूख !' और उसका छोटा भाई चार बरस का झँगले के बजाय बेबटन की फतुही पहने, बहती नाक को ऊपर खींचता हुआ, बहिन से पहले खाना पाने के लिये दौड़ कर माँ का अंचल थाम, बार-बार 'रोटी, रोटी दे !' चिल्लाने लगता है। घर के भीतर सवा बरस की दूसरी लड़की है ज़मीन पर घसिटती हुई। इतना समय पुनिया के घर से बाहर रहने में उसके आने पर दो-चार जगह सफ़ाई करने की आवश्यकता वह पैदा कर देती है। पुनिया क्या जानती नहीं, सफ़ाई किसे कहते हैं ? साहब के कमरे में फर्श की दरी पर अगर कोई तिनका या धागा पड़ा हो, तो वह उठा देती है। और अगर उनके छः जोड़े जूतों में से किसी एक पर धूल पड़ी हो, तो बहूजी को सुना कर पहाड़ी नौकर गुमान को, सफ़ाई का कायदा न जानने के लिये डाँट देती है। मुन्ना को वह बेबी-सोप छोड़ दूसरा साबुन नहीं लगा सकती। अगर कभी गुमान जल्दी में उसे सनलाइट की टिकिया थमा दे, तो उसके माथे पर बल पड़ जाते हैं। उसकी ऊनी जुराब में एक छेद हो जाय, तो वह बहूजी को सुना देती है—'हाँ, मुन्ना की जुराब फट रही है, हम नहीं जानते। ऐसी सर्दी पड़ रही है। आपको तो ज़रा फिकर ही नहीं, हाँ !' मुन्ना के बदन पर पफ़ के बिना पाउडर लगाना उसे अच्छा नहीं लगता। 'जानसन' के पाउडर की जगह अगर 'कस्सन' का पाउडर आ जाय, तो त्योरी चढ़ाकर कह देती है—'हाँ, सब कंजूसी मुन्ना के लिये ही तो है।' सन्तरा चाहे बाज़ार में चवन्नी का एक मिले ! वह ऊँचे स्वर में, सुना देती है, बच्चे को फल नहीं मिलेगा तो कब्ज नहीं हो जायगा ! और उसके अपने बच्चे बदन पर धूल लपेटते हैं ! वह उन्हें नहला नहीं पाती। दो घड़ी को घर आती है, तो दो रोटी सेंक उनके पेट में डाले कि नहलाने बैठे ?

उसका मर्द या तो चारपाई पर पड़ा कराहता रहता है या कोठरी के बाहर दीवार के सहारे बने चौंतरे पर दीवार से पीठ सटाये पुनिया

के आने की प्रतीक्षा में चिलम पीकर खाँसता रहता है। बाबू साहब के यहाँ से लौट, बड़बड़ाती हुई पुनिया बच्चे को सुलाने और जगह साफ़ करने में लग जाती है। धनकू को सुनाकर वह अपनी क़िस्मत से लड़ती है—'इतना तो नहीं होता कि बच्चों को ही सँभाल ले। दिन भर हाड़ तोड़ते हैं और घर आये कि चूल्हा ठण्ढा, न घर में उजेरा।'

धनकू अंटी में से दियासलाई का बकस निकाल उसकी ओर फेंक देता है कि मिट्टी के तेल की ढिबरी जला दे। आजकल के ज़माने में एक पैसे का तेल मुश्किल से दो दिन चलता है। इसलिये कोठरी में प्रायः अँधेरा रहता है। धनकू सोचता है, मिट्टी के तेल की दूकान पर घण्टों खड़े रहकर पैसे का तेल ला, उसे फूँक देने से क्या फायदा? उससे तो अच्छा उस पैसे की तम्बाकू ला, दो दिन काट सकता है। पर पुनिया नहीं मानती, ऊँचे स्वर में चिल्लाने लगती है—'इसे तम्बाकू की पड़ी है। अँधेरे में बच्चे डरते हैं, सो नहीं सूझता!' धनकू का मन ग्लानि से भर जाता है। अढ़ाई बरस से आतशिक के ज़ोर के कारण उसके हाथ-पैर नहीं चलते। इससे जोरू की बात उसे यों सुननी पड़ती है। दस रुपया महीना क्या कमा लाती है, जैसे मर्द को खरीद लिया है! मुँहजोर ऐसी हो रही है कि बात-बात पर लड़ती है। धनकू के लिये जब अपनी मर्दानगी का अपमान सहना असम्भव हो जाता है, तब वह थप्पड़ से, लात-घूँसे से अपने अधिकार को स्थापित करने की चेष्टा करता है। उस समय बच्चे रो पड़ते हैं; पुनिया मार की पीड़ा से और मन के दुख से खूब चीख-चीख कर रोती है; अपने मर जाने की प्रार्थना दैव से करती है और साथ ही धनकू को सड़-सड़ कर मर जाने का श्राप भी देती जाती है। अपने सभी प्रकार से असन्तुष्ट जीवन में अपनी मर्दानगी के प्रभाव से रोती हुई पुनिया को देख, उसे कुछ तो संतोष होता है, आखिर तो वह इस स्त्री का मर्द है, मालिक है; संसार

में उसके पास और कुछ न सही, एक औरत तो है ! उसके पाँव जब बुरी तरह पिराने लगते हैं, तो बनिये की दूकान से धेले का तेल, पैसे में उधार ला, उसे गरम कर पुनिया से आधी रात तक मालिश करवा सकता है ।

पुनिया दस रुपया महीना पाती है सही, परन्तु अढ़ाई रुपया हर महीने आग़ा ले जाता है । उससे पिछले जाड़ों में पुनिया ने पाँच रुपये लिये थे । उससे पहले भी रुपया-दो रुपये मौके-मौके लेती रही थी । सूद मिलाकर वे बीस हो गये । असल न सही, सूद तो अब वह हर महीने लेगा ही । ऐसे ही बनिये का कितना देना हो गया था ! उसने पुनिया की चाँदी की तमाम चीज़-बस्त रखा ली । अब पाँव की अँगुलियों में गिलट के बिछुए भर रह गये हैं । उसके बाप ने कानों में चाँदी के भारी-भारी करनफूल बनवा कर दिये थे, पर वे तो कभी के बनिये के यहाँ पड़े थे । सूद बढ़ते-बढ़ते जब छुड़ाने की उम्मीद न रही, तो पुनिया ने वे दे ही डाले । अब कानों में वह कागज़ का डाट बना कर लगाये रहती है कि छेद बंद न हो जायँ । कभी तो कोई चीज़ कान के लिये वह बनवा पायेगी ! अभी तो वह जवान है !

पुनिया के बच्चे भूखे रहते हैं, पर वह क्या करे ? अपने मन को वह समझा लेती है । धनकू के लिये वह क्या करे ? जो कुछ खुद पाती है, उसे भी देती है । परन्तु बच्चों को वह कैसे समझाये ? उनका भूख से ठुनकना उससे देखा नहीं जाता । दोपहर में या रात में घर लौटते समय कोई पूरी-पराँठा या सब्जी-तरकारी मौके से हाथ में लिये चली आती है कि बच्चों को हो जायगा ! उसके अपने लिये पैसे का चबैना बहुत और कभी-कभी वह भी नहीं । बच्चों के लिये रोटी भी सेंक देती है तो मरे, नमक या गुड़ के लिये जिद्द करने लगते हैं । इसी से पुनिया घर लौटने से पहले दो कंकड़ी नमक या मौके, से छटाँक-आधी छटाँक चीनी पुड़िया में ले लेती है । कोई चोरी के ख़्याल से नहीं; ऐसे

ही बच्चों को बहलाने के लिए। उन मरों का जी भी तो सभी कुछ खाने को करता है। और फिर इतनी-सी चीनी का क्या है ? चार आदमी चाय पीते हैं, तो इतनी तो प्यालों में रह जाती है। लेकिन बहूजी यह सब ताड़ती न हों सो बात नहीं ! पर बेशर्म से क्या कहें ? उसकी नीयत ही ऐसी है ! हर महीने वह बहूजी से दो-अढ़ाई पेशगी लेती है। वैसे पाँच उधार के भी होगये हैं। बहूजी हर महीने कह देती हैं, अब पेशगी कौड़ी नहीं दूँगी और पिछला काटूँगी ; परन्तु समय आने पर वह प्रतिज्ञा नहीं ठहरती। ऐसे ही वह मार्च की पन्द्रह तारीख़ को हाथ जोड़ फिर दो रुपये पेशगी ले गई, वे पाँच ही दिन में उड़ गये। करती क्या, बरस-दिन का फगुई का त्योहार ! जब धनकू दूसरों के दरवाज़े बैठ कर कुल्हड़ पी आता है; वह खुद दूसरों के यहाँ ज्योनार में जाती है, तो अपना मुँह कहाँ छिपा ले ! उन्नीस तारीख को फिर उसने बहूजी की खुशामद कर अठन्नी और ली, पर वह भी उड़ गई।

पुनिया के घर में अनाज के नाम पर दाना नहीं और दोनों बच्चे पूड़ी खाने की रट लगाये थे। हाते में घर-घर से तेल के पकवान बनने की महक उठ रही थी, तो उसके बच्चे ही क्या करते ? उन मरों का भी तो जी है ! बहूजी से वह कुछ माँगे, तो किस मुँह से ? नहीं तो फिर करे तो क्या ? धनकू पिछली रात, दो रुपये पेशगी लाने के लिये उससे लड़ता रहा।

मुन्ना के बीसों खिलौने थे। टूटने से पहले नये आ जाते। जगह-जगह पैरों में दब जाते थे, इससे बहूजी ने एक आलमारी में भरवा दिये। खिलौनों के साथ ही मामा के दिये चाँदी के छोटे-छोटे कटोरी-गिलास भी थे। उन्हें पटक-पटक मुन्ना ने बेकाम कर दिया था। वे भी उसी आलमारी में पड़े थे। बहूजी का ख़्याल था, ज़रा सयाना हो जाय, नये सिरे से उसके लिये कुछ बनवा देंगे ! पुनिया रोज़ ही उन चीजों को देखती थी, पर कभी उसे कुछ ख़याल न आया। बनी

हो तो, बिगड़ी हो तो, जिसकी माया है उसी की है। और मुन्ना की चीज़ पर वह कैसे नीयत डिगा सकती थी ? पर उस दिन उस मुसीबत में मन उसका हाथ में न रहा। चाँदी का एक बड़ा-सा झुनझुना था जिसमें चाँदी की जंजीर लगी थी। पुनिया ने सोचा, कम से कम तो होगी पाँच रुपये भर। रामजस के यहाँ तीन रुपये में रखा दे! पहली तारीख को महीना मिलते ही छुड़ा लेगी और जहाँ की तहाँ लाकर रख देगी। किसी को पता भी न चलेगा! किस्मत ने चक्कर दिया कि पुनिया ने जंजीर अंटी में खोंस ली।

रात चलते समय उसने गिड़गिड़ा कर कहा—'बहू जी कल बरस-दिन का त्योहार है, एक दिन की छुट्टी लेंगे। अगले दिन काम की अधिकता का अनुमान कर बहूजी ने बिगड़ कर कहा—'और क्या, जिस दिन काम का बोझ आ पड़ेगा, उसी दिन तो छुट्टी चाहिये!' पुनिया जिद कर रही थी, उन्हें मानना पड़ा।

किस्मत की बात! अगले दिन सुबह ही मुन्ना ने अपनी लकड़ी की बिल्ली पटक-पटक कर तोड़ दी। दूसरा खिलौना उसके लिये निकालने को बहू जी ने आलमारी खोली, तो चाँदी के कुटे-पिटे बेडौल बरतनों की ओर ध्यान गया; उन्हें गिनने लगीं। देखा, तो झुनझुने की जंजीर गायब! उन्होंने गुमान से पूछा। पुनिया पर उन्हें एतबार था। खाने-पीने की छोटी-मोटी चीज होती, तो एक बात थी। पर रुपये-पैसे और ज़ेवर के मामले में पुनिया का हाथ सच्चा था। बीसों बेर आलस्य-वश जेवर और रुपये छोटी तिजोरी में रखने के लिये उन्होंने पुनिया को दिये थे और कभी कोई बात नहीं हुई। बहूजी ने गुमान से पूछा, तो वह साफ़ कसम खा गया। बहूजी ने डाँटा—'तो क्या फिर जंजीर को आलमारी निगल गई? मैं कुछ नहीं जानती! अभी निकाल कर दो, नहीं तो पुलिस के हाथ पकड़वा दूँगी!'

गुमान को गुस्सा आ गया। एक तो वह 'पहाड़ी ठाकुर ठहरा!,

दूसरे उसने चोरी की नहीं थी। अलबत्ता पुनिया को बीस दफ़े छोटी-बड़ी चीज़ की चोरी करते उसने देखा था। वह लपकता हुआ चला गया। पास की पुलिस चौकी में था उसके गाँव का सिपाही सुजान-सिंह। गुमान ने सुजानसिंह के सामने अपनी व्यथा रो सुनाई और उसके साथ दूसरे सिपाही को ले पहुँच गया पुनिया के घर।

बरस-दिन का पर्व था। रात बाबूजी के यहाँ से आते ही धनकू ने पूछा था—'कुछ लाई?' पुनिया ने उत्तर दिया—'लाती कहाँ से? मेरा कुछ गड़ा रखा है वहाँ!' दोनों में बहुत रात गये तक झगड़ा होता रहा। पुनिया ने सोच लिया था, जंजीर धनकू के हाथ नहीं देगी। वह मुआ उसे कहीं बेच डाले, तो पाँच से कम क्या मिलेंगे। और कहीं गिरवी रखेगा, तो भी तीन-चार से कम नहीं लेगा। जंजीर उसकी अपनी थोड़े ही है? वह रामजस से केवल दो लेगी और पहली दूसरी तारीख को बहूजी से महीना मिलते ही छुड़ा-कर फिर जहाँ की तहाँ धर देगी। जिसकी चीज़ है उसी की रहे, उसे क्या लेना है। सुबह उठते ही धनकू फिर उसे बाबू जी के यहाँ जा, कुछ माँग लाने के लिये विवश कर रहा था। वह उसकी बात अनसुनी कर घर झाड़ने-बुहारने में लगी थी। बच्चों ने उठते ही रंग और पूड़ी के लिये जिद शुरू की। उन्हें वह समझा रही थी,—'एहे·······दिन तो निकल लेने दो!' वह सोचती थी, अभी थोड़ी देर मेंरामजस के यहाँ जायगी।

इतने में आ गया गुमान दो सिपाही लिये।

धनकू कुछ समझ न सका। पुनिया ने समझा तो, परन्तु उसे विश्वास न आया कि बहूजी ऐसा कर सकती हैं। गुमान ने कहा—'वह जंजीर कहाँ है?"

'कैसी ज़ंजीर?'—साहस कर पुनिया ने कहा—'हम क्या जानें!

हम क्या चोर हैं? हमेशा से हम तो बड़े आदमियों के यहाँ काम करते आये हैं।.........कोई चोर हैं क्या हम?"

पुलिसवाले की धौंस पर गुमान ने खुद ही कोठरी की तलाशी लेनी आरम्भ की? चीथड़े पलट डाले। इधर देखा, उधर टटोला; खपरैल में खोंसी हुई एक पुड़िया उसने खींच ली! और पुनिया चीख पड़ी।

सिपाही पुनिया को चौकी चलने को कह रहे थे और वह उनके पाँवों में लिपट-लिपट कह रही थी—'सिपाही जी, यह जंजीर हमें बहूजी ने खुद दी है; चलके पूछ लीजिये!'

धनकू एक ओर काँपता हुआ चुप खड़ा था। सारे अहाते के लोग चारों ओर गोल बाँधे भयभीत आँखों से तमाशा देख रहे थे। सब यत्न कर पुनिया हार गई। बरस-दिन के त्योहार के दिन सिपाही उसे थाने लिये जा रहे थे। बच्चे उसके चीख रहे थे। लोग कह रहे थे, बुरी नीयत का यही फल होता है। कोने का हलवाई कह रहा था, साली का मिजाज नहीं मिलता था! असल बात तो यह थी.........। आते-जाते उसने पुनिया को कई दफ़े कहा—'देखो, दही-रबड़ी खाओ तो ले जाया करो!'

आँखें चढ़ा पुनिया ने उत्तर दिया था—'देखो लाला, हम बाबूजी से कह देंगे; हाँ.........!'

'तो हम कुछ कहते हैं क्या?'—उत्तर दे लाला चुप रह गये थे।

कोने के पनवाड़ी ने रोती हुई पुनिया को सिपाहियों के साथ जाते देखा तो सोचा—रही हरामजादी ज़रूर बदमास! कै बेर पत्ती माँग-माँग के ले गई। और जब उसने पूछा—'तो कहो फिर क्या हाल हैं.........?' तो झमक कर निकल गई—'ठाकुर तुम तो बड़े वैसे हो!' और अब चोरी में पकड़ी गई न? किसी को कुछ गिनती थोड़े थी! हराम का खानेवालों की यही बात होती है!

घर लौट गुमान ने अभिमान से सब बात कह सुनाई। बहूजी

काँप उठीं। चिल्लाकर उन्होंने कहा—'मरा तू ऐसा लाट साहब हो गया! किसने कहा था तुझे यह पंचायत करने को? जंजीर चली गई थी, तो तुझे क्या? तेरा क्या गया था? बड़ा सिपाही बनता है।' आँखों में आँसू लिये वे बाबूजी के पास पहुँचीं। बालों और मुँह पर रंग मले वे भूत बने थे, सुनकर घबरा गये! बोले, तो फिर! रोकर बहूजी ने कहा—'तो क्या, जल्दी जाते क्यों नहीं! बरस-दिन के पर्व के दिन उसके बच्चे बिलखते होंगे। कैसी हाय पड़ेगी·······! थाने जाकर कह दो, जंजीर उसे हमने दी थी!'

बाबूजी डाकखाने में बड़े बाबू हैं सही, पर पुलिस के नाम से तो डर लगता ही है। बहूजी की बात कैसे टालते·······? जल्दी-जल्दी मुँह धोया, हजामत बनाई और साफ़ कपड़े पहिन, गुमान को साथ ले चौकी पहुँचे। वहाँ पुनिया एक तरफ़ बैठी लम्बी साँसें ले रही थी और सिपाही गा रहे थे—'फागुन में चलत फगुई बयार....!'

बाबूजी ने हवलदार साहब को समझाया, पुनिया जंजीर लिये घर पहुँची, तो विस्मय-से देखते लोगों की ओर अभिमान से देख रही थी—'लो, देख लिया!'

बहूजी की नाराज़गी की हद नहीं थी। उन्होंने कहा—'नमकहराम है, चोर है, बदमाश है और उसे कभी घर में रखेंगे नहीं।' पुनिया कुछ बोलती ही नहीं। मुन्ना को खूब बना-सँवार कर गोद ले बाहर जा बैठती है।

अहाते के लोग समझते न हों, सो बात नहीं। जब पुनिया कोने पर से गुज़रती है, हलवाई और पनवाड़ी आपस में बोली देते हैं—"हाँ भाई, बड़े-बड़े शिकार हैं·······हम जैसों को कौन पूछता है?"

हवाखोर

शरीर के भीतरी भागों में जो घाव पैदा हो जाते हैं, एक्सरे से उनकी जाँच-पडताल कर इलाज की व्यवस्था की जाती है। ज़िन्दगी में कुछ घाव ऐसे भी लगते हैं जिन्हें छिपाना ही पड़ता है। इन घावों का इलाज, सहने का अभ्यास ही है।

समाज के अत्याचार से पीड़ित व्यक्ति समाज से पनाह माँगने लगता है। समाज से दूर भाग कर वह समय की शरण लेना चाहता है। समय का मरहम ही उसके घावों को भरकर उन पर अङ्कुर ला सकता है। उसे एकान्त ही अच्छा लगने लगता है। केवल असामाजिक बनकर ही वह समाज से अपना असहयोग और मूक असन्तोष प्रकट कर सकता है।

वह घटना घटी थी नवम्बर के अन्तिम सप्ताह में। दिसम्बर की चौबीस तारीख से यूनिवर्सिटी, बड़े दिन की छुट्टियों में मुहर्रम वग़ैरह मिलाकर, जनवरी के पहले सप्ताह तक के लिए बन्द हो गयी। नारायण यूनिवर्सिटी में लेक्चरार है। यौवन की पहली अवस्था में उत्तरदायित्व की अपेक्षा उमङ्ग का ही ज़ोर रहता है। नारायण को भी प्रति मास वेतन के रूप में मिलनेवाले रुपयों की अपेक्षा अनेक छुट्टियों का ही महत्त्व अधिक जान पड़ता है।

लोगों की मर्मवेधी दृष्टि से अपने ज़ख्मी हृदय को बचाने के लिए उसने किसी तरह कराहते हुए एक मास बिताया था। छुट्टियाँ होते ही वह जाड़े के उजड़े नैनीताल में एकान्त ढूँढ़ने चल दिया।

पृथ्वी के साधारण धरातल से हज़ारों फुट ऊँचे उठे पहाड़ों की असाधारण, उत्तेजक और स्फूर्ति दायक वायु और प्राकृति के अगणित प्रहारों के बावजूद अडिग और उत्तुङ्ग बने रहने वाले शिखरों ने उसे समझाया—प्रहार सहकर संसार में सीधे खड़े रहना ही मनुष्यत्व है।

मानसिक परिवर्तन आ जाने पर उसने शिथिल होते जीवन को सँभालने की चिन्ता आरम्भ की। गिरता स्वास्थ्य सुधारने का निश्चय किया; पहाड़ की प्राण पोषक वायु में नियमित भोजन, स्वाध्याय और व्यायाम; प्रातःकाल दूर तक पहाड़ पर चढ़ना और सन्ध्या समय किराये का घोड़ा ले झील के चारों ओर चक्कर लगाना।

गोबिन्द अपने घोड़े पर जीन-साज कसे मल्लीताल पर ग्राहकों की प्रतीक्षा में धूप सेंका करता। घोड़े के सामने थोड़ी घास डाल देता या ग्राहक के न आने पर घोड़े की मलाई-दलाई करने लगता। घोड़ा चढ़ती उम्र का था। खाने को पर्याप्त मिलता और परिश्रम साधारण। पुट्ठे भरे हुए थे। लाल बादामी रङ्ग के रोयें पालिश से सुनहरी झलक मारने लगते। घोड़े का रूप-रङ्ग और उठान सहज ही शौकीन ग्राहकों को खींच लेती। गोविन्द सवार के पीछे-पीछे भागता चलता। घोड़े को थकान से बचाने के लिए वह दूसरे घोड़े-वालों की तरह, चढ़ाई में घोड़े की पूँछ पकड़ स्वयम सहारा नहीं लेता। घोड़े की ममता अपनी थकान से प्रबल थी·······वह जीवन का अवलम्ब था।

नारायण सवार नहीं था। सवारी सीखना चाहता था। गोविन्द के घोड़े ने उसे आकर्षित किया। प्रति सन्ध्या सवारी के लिए उसे नियत कर लिया। गोबिन्द साँझ को पाँच बजे नारायण के लिए घोड़ा हिमालय होटल ले आता।

दूसरे मरियल घोड़ों के मुकाबिले में गोविन्द के घोड़े की तारीफ़ न करना असम्भव था। नारायण ने भी उसे सराहा। सन्तोष और अभिमान से गद्गद स्वर में, घोड़े के नरम नथनों पर हाथ फेर, गोबिन्द ने उत्तर दिया—'तो क्या हुजूर ऐसे ही है। अपनी जान से बढ़कर इशकी शवा करता हूँ। एक बकत अपने फाका भी हो जायं तो इशे भूखा थोड़े ही रख शकता हूँ। शीजन में ढाई तीन रुपया कमा देता है। तब इशे रोज आध पाव घी देता था। अब भी डेढ़-दो कमाता है तो बारह आने

रुपया इशे खिला देता हूँ। आठ आने का आज कल दो शर दाना, एक छटाँक घी और आध पाव गुड़। बाबूजी, तबी तो ऐशा बना है……!'

घोड़ा भी जैसे गोविन्द की बातें समझता था। पक्की सड़क पर अपने सुमों की ताल दिखाने के लिए मटक-मटक कर चलने लगता। सवार की इच्छा न होने पर भी, बल्कि उसके भयको समझ, ख्वाहम-ख्वाह तेज़ दुलकी या सरपट दौड़ने के लिए मुँह मारने लगता।

तीन जनवरी की रात वर्षा के कारण भीषण सर्दी हो गई। नारायण रजाई पर दो कम्बल डाल, सिकुड़ कर लेटा हुआ एक पुस्तक पढ़ रहा था। होटल की टीन की छत पर वर्षा की बूँदों की गूंज सहसा कड़कड़ाहट में बदल गई। समझा, ओले हैं। इस विचार से ही सर्दी ज़्यादा मालूम होने लगी। बत्ती बुझा छत पर ओलों के मार की गूंजमें आतंक मिली एक शान्ति की अनुभूति से वह आँखें मूँदे लेट गया। आँखें मूंदे ही वह सोच रहा था—'प्रकृति अपनी सब शक्तियों से मनुष्य के प्राणों पर निर्मम आघात करती है फिर भी मनुष्य अपने जीवन की रक्षा करता ही है। ऐसे ही समाज की परिस्थितियाँ मनुष्य के मनुष्यत्व को हर क़दम पर प्रताड़ित करती हैं फिर भी उसे मनुष्य बने रहने का यत्न तो करता ही है……।' उसे नींद आ गयी। दिन चढ़ा पर सूरज छिपा ही रहा। ठहर-ठहर कर वर्षा हो रही थी। नारायण बल्लम ले पहाड़ की चढ़ाई की कसरत के लिए न जा सका। दिन भर खिड़की के सामने बैठा, झील की ओर मुख किये कभी वह पुस्तक के पन्नों को देखता और कभी पहाड़ की ढालों और झील पर लुढ़कते रुई के गोलों जैसे बादलों को। नारायण मनकी उदासी में उपन्यासों की रोचकता से खीझकर एक विचित्र-सी पुस्तक साथ लिये आया था और पढ़ रहा था—'सौन्दय की धारणा उससे प्राप्त होनेवाले सन्तोष और तुष्टि पर निर्भर करती है।'····उसका तर्क कहने लगा इसका अर्थ हुआ, मनुष्य के हृदय की सम्पूर्ण विशालता उपयोगिता पर निर्भर करती है·······यानी

मनुष्य मूलतः केवल स्वार्थी है। चोट को चुपचाप सहने के अभिमान से भरा उसका मन इस पार्थिवता को स्वीकार करने के लिए तैयार न था।

दायें हाथ के अँगूठे को पुस्तक के पन्नों में और दूसरे हाथ के अँगूठे को दाँतों से दबाये वह अधमुँदी आँखों से पुस्तक की अपेक्षा अधिक रुचिकर, खिड़की से दिखाई देनेवाले दृश्य को देख रहा था। सहसा कोहरा झील की सतह पर छा गया। पहाड़ की ढालपर वृक्षों की आड़ से दिखाई देनेवाले बँगले, कोठियाँ, झील की विस्तृत हरी नीली सतह और लहरों के थपेड़ों से हिलती छोटी-छोटी नावें सब एक धूमिल पर्दे में अदृश्य हो गयीं। होटल के सामने अत्यन्त समीप गिरजे की चोटी और सड़क भी उसी पर्दे में छिप गयीं। फिर सहसा कोहरा डाकखाने के समीप के गलियारे से नीचे लुढ़क चला।

पश्चिम में काठगोदाम के मैदान में जमे बादलों की ओट से सूर्य की किरणें बादलों का पट चीरकर झाँकने लगीं। वे वैसी ही मोहक और स्फूर्तिदायक थीं जैसी चिक की ओट से झाँकनेवाली सहमी हुई आँखें। पूर्व में नयी बरफ का उज्ज्वल हीरक मुकुट पहने चीना चोटी उघड़ आयी, सामने की ढालपर लाल छतें दिखाई देने लगीं, उनपर आधी पिघली बरफ़ और भीगकर काले दिखाई पड़नेवाले वृक्षों की टहनियों पर लदी बरफ़ पश्चिम की ओर उतरते सूर्य की, बादलों से लुक-छिपकर आनेवाली किरणों के स्पर्श से सिन्दूरी और नीली धूमिल दिखाई देने लगीं। हलकी-हलकी हवा चलने लगी। वृक्ष झूमने लगे और उनकी शाखाओं से बरफ झड़ने लगी। शीघ्र ही सब कुछ स्पष्ट हो गया। झील की हरी-नीली सतह वायु के थपेड़ों से डलमल करने लगी। झील के इस छोर से उस छोर तक फैली लहरें, एक के पीछे एक, समान अन्तर से, मल्लीताल से उठ तल्लीताल की ओर दौड़ने लगीं जैसे झील के विस्तृत केश-पाशकी लहरों पर कङ्घियाँ चली जा रही हों!

अपने शरीर पर कम्बल लपेटते हुए नारायण सोचने लगा—

और यदि कहा जाय कि इस सब सौन्दर्य का कोई पार्थिव मूल्य नहीं, इससे किसी का पेट नहीं भरता, तन नहीं ढँकता, इसलिए यह सौन्दर्य ही नहीं !……छिः ! कहकर उसने पुस्तक को नीचे नमदे पर पटक दिया।

झील-किनारे झूमते वृक्षों के नीचे सूनी, भीगी, बरफ़ से चित्रित सड़क पर गोविन्द अपने सुडौल घोड़े पर चौका भरते होटल की ओर चला आता दिखाई दिया। उस सर्दी और हवा में भी गोबिन्द का सीना उभरा हुआ था। घोड़े और सवार की वह निर्भीक मुद्रा नारायण को बहुत भली मालूम हुई। उसे तेज़ी से अपनी ओर आते वह एकटक देखता रहा। क्या आनन्द ले रहा है जवान !

नारायण की खिड़की से कुछ कदम परे ही घोड़े से उतर गोबिन्द रास थामे खिड़की के नीचे आ खड़ा हुआ। उस तीखी ठण्डी हवा में बाहर निकलने को नारायण का मन न हुआ। घोड़े को देखकर भी वह कम्बल में लिपटा रहा।

ग्राहक को उठते न देख गोविन्द ने उसे सम्बोधन किया—'हुजूर हवा खाने नहीं जायेगा ?'

नारायण मुस्करा दिया—'आज तुम खुद ही हवा खाओ !'

सिर लटका कर गोबिन्द धीरे से बोला पर नारायण ने सुन लिया—'अरे साहब, हम गरीब लोग क्या हवा खायेगा !'

'क्यों ?' नारायण ने पूछा—'तुम्हें हवा खाना अच्छा नहीं लगता ?'

सिर कुछ ऊपर उठा निराशा के-से स्वर में गोबिन्द ने उत्तर दिया—'हमको तो खाने को अनाज ही नहीं मिलता ; हम लोग हवा क्या खायेगा ?'

नारायण चुप हो गया। 'यह सब अनुपम सौन्दर्य इसे सौन्दर्य नहीं जँच रहा। वह बहुत देर तक सोचता रहा……उसे केवल रोटी का शौक है……वह हवाखोर नहीं।'

शम्बूक

मुदगल नगरी में शूद्रों और दासों के विद्रोह के कारण विशृंखला और अराजकता फैल रही थी। अपना परम्परागत धर्म, द्विजों की सेवा छोड़ शूद्र और दास मुक्ति की कामना से तपस्या करने लगे।

महर्षि बज्राहुति के कर्म-काण्ड ज्ञान और निष्ठा का यश चारों दिशाओं में फैल रहा था। महर्षि का विश्वास मिथिलाधिपति 'विदेह' जनक के आत्मवाद में होगया। महर्षि ने ज्ञान लाभ किया-कर्म से फल और आसक्ति का अनिवार्य सम्बन्ध है। सुकर्म का फल, सुख भी अविनाशी आत्मा को जीवन की शृंखला में बाँधकर उसे मोक्ष से दूर रखता है। शाश्वत आत्मा फलकी इच्छा के बंधन से मुक्त होकर ही परमानन्द पा सकता है। उसका उपाय है, कर्म से निवृत्ति !

वे अपना आश्रम छोड़ कर्म निवृत्ति के लिये एकान्त में चले गये।

महर्षि बज्राहुति का दास शम्बूक भी कर्म निवृत्ति से परमानन्द प्राप्ति का रहस्य जान मुदगल नगरी में आया। शम्बूक ने शूद्रों और दासों को उद्‌बोधन दिया—"अपनी परवशता के कारण शूद्र और दास इस लोक के सुख से वंचित हैं। यज्ञों के अनुष्ठान का साधन और अवसर न होने से वे परलोक की आशा नहीं कर सकते। उनके लिये सुख और मुक्ति का उपाय केवल कर्म निवृत्ति से मोक्ष प्राप्ति है।

शूद्र और दास केवल भ्रम के कारण परवशता का दुख भोगते हैं। आहार, निद्रा, विश्राम और वांछित पदार्थों का न मिलना यह सब शारीरिक दुःख केवल भ्रम है। इस भ्रम को तप द्वारा प्राप्त ज्ञान के साधन से जीता जा सकता है।"

शम्बूक के ज्ञान-प्रचार और उपदेश से शूद्र और दास अपने द्विज स्वामियों के सेवा प्राप्त करने के अधिकार से विद्रोह कर बैठे। भोजन और दूसरे नितान्त आवश्यक पदार्थों का अभाव उन्हें सताने लगा। उनके मन

डगमगाने लगे। शम्बूक ने उन्हें उपदेश दिया—"दुःख का यह अनुभव केवल भ्रम है। क्षुधा से अनुभव होने वाले दुःख का उपाय है, कठोर तप से शरीर को वह दुःख अनुभव न होने देना।"

अभाव के दुख से व्याकुल शूद्र लोग अग्नि ताप कर, शूलों पर लेटकर, शरीर में शूल गड़ा कर भ्रम से अनुभव होने वाले दुखों से ध्यान हटा, मुक्ति का ज्ञान पाने की चेष्टा करने लगे। मुद्गल का वर्णाश्रम समाज आवश्यक सेवा के अभाव में अपने धर्म यज्ञ, व्रत, यम-नियम के पालन में असमर्थ हो गया। सब ओर पाप ही पाप फैल गया।

महाज्ञानी ऋत्वक वर्हि उस समय कई दिन तक चलने वाले यज्ञ का अनुष्ठान कर रहे थे। अनेक समय से रोगग्रस्त उनका युवा पुत्र उनके दासों की परिचर्या में था। दासों के सेवा कार्य छोड़ जाने पर उनका रोगी पुत्र निराश्रय होगया। पुत्र की चिन्ता से यज्ञ कार्य में लगे विप्र का मन उद्विग्न होने लगा—वे यज्ञ को अपूर्ण छोड़ने का पातक करें; रोगी, मृत्यु के भय से पीड़ित पुत्र की सेवा करे ?' उन्होंने निश्चय किया—पुत्र, कलत्र, धन-सम्पदा यह सब केवल इस लोक के साथी हैं। परलोक में केवल धर्म ही साथ जायगा। यह सब सांसारिक सुख पुण्यकार्य का ही फल हैं, इसलिये पहले पुण्य कार्य ही सम्पन्न करना चाहिये।

यज्ञ समाप्त होने के साथ ही ऋत्वक का पुत्र उचित सेवा और परिचर्या न पा सकने के कारण मरगया। परमज्ञानी वर्हि पुत्र शोक के आघात से अधीर हो उठे। उन्हें मति विभ्रम होने लगा—क्या यज्ञ के पुण्य कार्य का फल उन्हें पुत्र शोक के रूप में मिला है ? धर्म और भगवान के न्याय के प्रति उन्हें अविश्वास होने लगा।

पुत्र शोक का भीषण उद्वेग कम होने पर महाज्ञानी वर्हि की मति स्थिर हुई। वे सोचने लगे—देवताओं का ऐसा भयंकर क्रोध बिना किसी महा पाप के नहीं हो सकता। गूढ़ चिन्ता से उन्हें ज्ञान हुआ—वर्णाश्रम धर्म के ह्रास का महापाप चारों ओर अराजकता, अशान्ति

और अन्याय फैलाये हैं। शूद्र और दास ब्राह्मणों और द्विजों के कर्म तपस्या द्वारा मुक्ति प्राप्ति का यत्न कर रहे हैं और ब्राह्मण शूद्रों के नीच कर्म करने के लिये बाध्य हैं। परम्परा का नियम भंगकर पृथ्वी को कंपा देने वाले इसी पाप के फल से पृथ्वी के देवता ब्राह्मण को युवा पुत्र का शोक हुआ। अपने निजी दुख को व्यापक रूप दे, वर्हि का हृदय इस पापका प्रतिकार करने के लिये क्षुब्ध हो उठा।

महाज्ञानी वर्हि इस पाप की दुहाई देने भक्तवत्सल, रघुकुल-सूर्य, भगवान राम की शरण अयोध्या पहुंचे। क्षुब्ध ब्राह्मण के आगमन का समाचार सुन भगवान नंगे पाँव दौड़े आये और हाथ जोड़ प्रार्थना की —"हे भूदेव, पृथ्वी पर तुम्हारा वचन ही धर्म और नियम है। तुम्हारे आशीर्वाद से ही क्षत्रिय राज्य सत्ता प्राप्त कर धर्म और न्याय की रक्षा करते हैं।.........दास सेवा के लिये प्रस्तुत है।

महाज्ञानी वर्हि से मुद्गल नगरी में छाये महापातक और द्विजों के दुख का वृतान्त सुन भक्त वत्सलराम पृथ्वी पर धर्म रक्षा के लिये तैयार हो गये और उन्होंने चतुरंगिणी सेना ले मुद्गल नगरी के लिये प्रस्थान कर दिया।

शम्बूक के अनुयायी दास और शूद्र मुद्गल नगर के समीप उपवन में एकत्र हो भाँति-भाँति के कठोर तपों से वासनाओं से ध्यान हटा रहे थे। शम्बूक एक गुफ़ा में पंचाग्नि के केन्द्र में सिर नीचे और पाँव ऊपर कर वृक्षासन से तपस्या कर रहा था।

दुष्टों का दलन करनेवाले भगवान राम के शूर सैनिकों ने उन मुक्ति की इच्छा करने वाले धर्म द्रोही शूद्रों को बन्दी बना एक मैदान में एकत्र कर दिया। भगवान राम हाथ में कृपाण ले, शम्बूक की गुफा में गये और उसे सिर के केशों से खींचते हुये गुफ़ा से बाहर निकाल लाये। भय से काँपते हुये बन्दी शूद्रों और विस्मय से आँखें फैलाये, कर—जोड़ खड़े द्विजों की श्रेणियों के सन्मुख उन्होंने उसे पटक दिया।

अपने पाँव पर खड़े हो शम्बूक ने देखा—आभापुंज, सर्व दुख हरण, मोक्षदाता भगवान साक्षात् खड़े हैं। प्रसन्नता से उसके नेत्र चमक उठे—'मेरी तपस्या सफल हुई!'—शम्बूक ने कहा—'भगवान मुझे मुक्ति दान दीजिये!'

राजीवलोचन राम के नेत्र क्रोध से रक्त वर्ण हो गये। उन्होंने शम्बूक की प्रतारणा की—'मुक्ति धर्म ब्राह्मण का है, शूद्र का नहीं!'

'भगवन, न्याय!'—शम्बूक ने भिक्षा माँगी।

'स्वामी और ब्राह्मण का बचन ही न्याय है'—मेघ गर्जना से भगवान ने उत्तर दिया। उनका दायाँ हाथ कृपाण सहित शम्बूक के कंधे से ऊपर उठ गया।

शम्बूक के कातर नेत्र ऊपर उठे—'भगवान का क्या यही न्याय है?'—उसने क्षीण स्वर में प्रार्थना की।

भगवान का क्रोध बढ़ गया—'मूर्ख शूद्र, ब्राह्मण का बचन ही न्याय है!'—उन्होंने गर्जन किया।

'तो फिर मुक्ति की भी इच्छा नहीं!'—शम्बूक ने सिर ऊँचा उठा लिया।

'महापातक'—भगवान के मुख से सक्रोध निकला और उनके हाथ का कृपाण शम्बूक के सिर को पृथ्वी पर गिरा नीचे आ गया।

भगवान ने आग्नेय नेत्रों से बन्दी शूद्रों की ओर देखा। वे लोग पृथ्वी पर सिर झुका, आधीनता से क्षमा याचना कर रहे थे।

पृथ्वी हिल उठी…………।

कर जोड़ खड़े द्विजों की श्रेणी ने श्रद्धा से मस्तक झुका दिये। ब्राह्मणों ने आशीर्वाद मंत्र का उच्चारण किया। उन्होंने कहा—'भगवान के न्याय से देवता प्रसन्न हुये और पृथ्वी पर धर्म की स्थापना हुई।'

भगवान राम के चरणारविंद में मन लगा विप्र और द्विज वर्णधर्म में संलग्न हो गये।

देशद्रोही—'संसार की किसी भी समृद्ध भाषा के श्रेष्ठ उपन्यासों के मुकाबिले रखा जा सकता है……सोवियट का वर्णन अत्यन्त वास्तविक और रोचक है……………।"

मूल्य ३॥) **—राहुल सांकृत्यायन**

"**चक्कर क्लब**—का प्रकाशन हिन्दी साहित्य में घटना के रूप से महत्वपूर्ण होगा। उसका व्यङ्ग जितना सबल है उतना ही रोचक……।"

मूल्य १॥) **—डा० रामविलास शर्मा**

"**गान्धीवाद की शव परीक्षा**—"इस पुस्तक की अवहेलना नहीं की जा सकती।" मूल्य १॥) **—भदन्त आनन्द कौसल्यायन**

दादा-कामरेड—"भारत भर की भाषाओं में यही एक पुस्तक है, जो रोमांचक उपन्यास के रूप में भारत के राजनैतिक विकास की समस्या सुलझाती है।"

मूल्य २) **—पी० वाई० देशपाण्डे, प्रो० नागपुर यूनीवर्सिटी**

पिंजरे की उड़ान—"इस संग्रह की कहानियाँ संसार का सर्वोत्तम कहानियों के संग्रह में रखे जाने योग्य हैं……………।"

मूल्य १॥।) **—नेशनल हेराल्ड**

वो दुनियाँ—"हिन्दी कथा साहित्य अभी तक लेता ही रहा, इस प्रकार की रचनाओं से वह दूसरी भाषाओं को देने योग्य हो रहा है……।"

मूल्य १॥) **—कविवर मैथिलीशरण गुप्त**

मार्क्सवाद (कम्यूनिज़्म) …पुस्तक अत्यन्त रोचक और उपयोगी है। इस प्रकार की उपयोगी पुस्तक अंगरेज़ी में भी कम मिलेगी…।"

मूल्य २) **—डा० प्राणनाथ प्रोफ़ेसर अर्थशास्त्र** B. H. U.

न्याय का संघर्ष—"लेखक ने कलम की नोक से आत्मविस्मृत समाज को जगाने की चेष्टा की है……।" [हास्यरस की पुस्तक]

मूल्य १) **—आचार्य नरेन्द्रदेव**

ज्ञानदान—"यशपाल ने हिन्दी को जो दिया है वह न तो शरत बाबू बंगला में दे सकते थे, न प्रेमचन्द हिन्दी को…… ।"

मूल्य १॥।) **—भगवतशरण उपाध्याय 'हंस' अक्तूबर' ४२**

यशपाल का तीसरा उपन्यासः— समाज के मौलिक संघर्ष और कटुवास्तविकता का विश्लेषण।